गुरु रविदास और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन
(सामाजिक दृष्टि से)

GURU RAVIDASS AUR KABIR KA TULNATMAK ADHYAYAN
(SAMAJIK DRISHTI SE)

A THESIS

SUBMITTED TO THE PANJAB UNIVERSITY, CHANDIGARH

FOR THE DEGREE OF

Doctor of Philosophy

IN THE FACULTY OF LANGUAGES

1991

GITALI VERMA

गुरु रविदास और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन : (सामाजिक दृष्टि से)

-0-0-0-0-

विषय - सूची

विषय प्रवेश -

प्रथम अध्याय - गुरु रविदास और संत कबीर तत्कालीन परिस्थितियां 1-25

: सामाजिक परिस्थितियां
: राजनैतिक परिस्थितियां
: आर्थिक परिस्थितियां
: धार्मिक परिस्थितियां
: साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां
: निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय - गुरु रविदास और संत कबीर - जीवन-वृत्त 26-73

: जन्म-तिथि
: जन्म समय
: जन्म स्थान
: जाति
: परिवार
: गुरु
: शिक्षा
: भ्रमण
: आत्म-साक्षात्कार
: जीवन सम्बन्धी किंवदन्तियां

तृतीय अध्याय - गुरु रविदास और संत कबीर की विचारधारा 74-105

: निर्गुण ब्रह्म की उपासना
: ब्रह्म
: जीवात्मा, जीव
: माया
: जगत
: निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय - गुरु रविदास और संत कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण 106-134

: वर्णाश्रम व्यवस्था का विद्रोह
: बाह्याचारों का विरोध
: साम्प्रदायिक भेदभाव सम्बन्धी विचार
: एकेश्वर पर बल
: समतावाद
: नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण
: निष्कर्ष

पंचम अध्याय - गुरु रविदास और संत कबीर की वाणी में काव्य-तत्व 135-179

: भाषा
: शैली
: रस
: छन्द
: अलंकार
: प्रतीक शैली विधान

षष्ठम अध्याय - उपरोक्त अध्ययन के आधार पर दोनों संत कवियों के वृत्तचित्रात्मक शोध का निष्कर्ष 180-205

सहायक पुस्तक सूची 206-218

विषय - प्रवेश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक माना गया है। इस युग को यदि सामन्तवादियों तथा रूढ़िवादियों का युग कहा जाये तो अनुचित न होगा। इस युग में सम्पूर्ण देश पर निराशा और मुसीबत के बादल छाये हुए थे। जातिवाद से उत्पन्न छुआछूत और ऊंच-नीच की विचारधारा से हिन्दू समाज की नींव इतनी कमज़ोर हो गयी थी कि वह अपने अस्तित्व की रक्षा करते-करते क्षीण और अपंग हो कर रह गया था। मध्ययुग में ऐसे महान् और विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महापुरुषों का आविर्भाव हुआ था, जिनका नाम भारत के धार्मिक और सामाजिक इतिहास में सदा के लिए बना रहेगा।

गुरु रविदास और संत कबीरदास का व्यक्तित्व बहुमुखी और विलक्षण था। उन्होंने अपने युग के समाज को बड़ी सूक्ष्मता से देखा-परखा था। उन्होंने तद्युगीन परिवेश और स्वानुभूति के आधार पर जीवन के रहस्य का जो ज्ञान प्राप्त किया था उसे ही अपने द्वारा 'कथनी और करनी' में सुमेल पैदा किया। इसी सिद्धान्त और व्यवहार को समभूमि पर ला कर खड़ा किया। उनका आध्यात्मिक लक्ष्य जहां 'ब्रह्मानन्द' की प्राप्ति था वहां सामाजिक लक्ष्य का शिखर लोक-मंगल की भावना में सन्निहित था। इसी कारण इन संत कवियों की वाणी में परम-तत्व की साधना के साथ-साथ आचरण की शुद्धि सात्विकता पर भी बल दिया गया है।

प्रस्तुत शोध का विषय "गुरु रविदास और संत कबीरदास का तुलनात्मक अध्ययन: सामाजिक दृष्टि से" इसलिए चुना था क्योंकि गुरु रविदास और संत कबीर समकालीन तो थे परन्तु जितना महत्व सन्त कबीर जी को

दिया गया उतना गुरु रविदास जी को नहीं प्रदान किया गया। शोध-कार्य भी जितना संत कबीर पर किया गया उतना गुरु रविदास जी पर नहीं। इसलिए मैंने अपने अध्ययन में अधुना-उपेक्षित गुरु रविदास जी को विशेष रूप से महत्ता प्रदान की है तथा अध्ययन का मुख्य विषय बनाया है।

गुरु रविदास और संत कबीर एक ही गुरु के शिष्य थे, दोनों ही निम्नजाति, जिसे हेय दृष्टि से देखा जाता था से सम्बद्ध थे, दोनों ने निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की। संत कबीरदास की शैली जहां खंडन मंडनात्मक है वहीं गुरु रविदास जी अपनी बात को शान्त और सौम्य - भाव से कहते हैं।

हिन्दी साहित्य के विद्वान लेखकों द्वारा गुरु रविदास जी प्राय: उपेक्षित रहे हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक जितने भी साहित्य के इतिहासज्ञ हुए हैं उन्होंने गुरु रविदास जी पर मात्र दो-चार पंक्तियां लिख कर संतुष्टि पा ली है। भारत के अनेक विद्वानों और संतों ने विशेषकर संत कबीर जी की वाणी और जीवनी पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं और शोध कार्य भी किया गया है परन्तु गुरु रविदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उसी प्रकार उपेक्षित रहा है, जिस प्रकार शताब्दियों तक उनकी जाति अछूत एवं अस्पृश्य समझी जाती रही है।

कुछ विद्वानों ने गुरु रविदास जी की जीवनी और वाणी को लेकर पुस्तकें लिखीं, परन्तु वे अपनी खोज और शोधकार्य में वहां तक पहुंचने में असमर्थ रहे हैं जहां तक गुरु रविदास जी को समझने के लिए पहुंचना चाहिए था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार - 'रविदास वाणी तो

किसी ने स्याई-जहाज में बैठकर सारे भारतवर्ष में बिखेर रखी है, जिसकी खोज करना सन्त साहित्य के प्रेमियों और शोध-कर्त्ताओं का काम है।'

गुरु रविदास जी की अमृत-वाणी हमारे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। वह सत्य-सनातन धर्म की ऐसी अनुपम थाती है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। अधिकांश विश्वविद्यालय, संत साहित्य प्रेमी, पारखी शोधकर्त्ता गुरु रविदास वाणी की खोज और अनुसंधान के प्रति उदासीन रहे हैं। परन्तु पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में 'गुरु रविदास - चेयर' की स्थापना की गयी है जिसके प्रोफैसर तथा चेयरमैन डा० धर्मपाल सिंहल हैं। इनके निर्देशन में गुरु रविदास जी पर शोध-कार्य चल रहा है। अनेक शोध-विद्यार्थी उनके निर्देशन में शोधकार्य कर रहे हैं और अनेक विद्यार्थी कर चुके हैं। डा० धर्मपाल सिंहल ने भी 'संत शिरोमणि रविदास' 'प्राचीन जीवन-कथा श्री गुरु रविदास जी', 'जसकीरत गुरु रविदास जी' जैसी पुस्तकें साहित्य को दी हैं। इसके अतिरिक्त 'गुरु रविदास संस्थान' द्वारा डा० बी० पी० शर्मा ने 'गुरु रविदास-वाणी' का एक शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है। 'रविदास - दर्शन' के नाम से गुरु रविदास जी की साखियों का संग्रह भी आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद द्वारा लिखा गया। डा० मनमोहन सहगल, डा० रत्नसिंह जग्गी, डा० शिवकुमार शांडिल्य, डा० शुकदेव सिंह, डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, प्रभृति विद्वान भी गुरु रविदास वाणी पर विशिष्ट कार्य कर रहे हैं इन्होंने उनकी वाणी के अपने स्त्रोतों से संकलन भी प्रकाशित किए हैं और दोनों ही महान संत कवियों पर महती आलोचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किये हैं।

यदि इसी प्रकार गुरु रविदास जी की वाणी तथा जीवनी पर ध्यान दिया गया तो साहित्य-प्रेमियों की प्रवृत्ति रविदास-वाणी की खोज और शोध की ओर अधिकाधिक बढ़ेगी। हमारा प्रस्तुत शोध-कार्य भी इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

Gitali Verma

प्रथम अध्याय

गुरु रविदास और संत कबीर
तत्कालीन परिस्थितियां

-0-0-0-0-0-

यह निर्विवाद सत्य है कि अपने युगीन परिवेश और परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर अवश्य पड़ता है। यही प्रभाव संत कबीर और गुरु रविदासजी ने भी ग्रहण किया। संत कबीर और गुरु रविदासजी सन्त कवि ही नहीं थे अपितु क्रान्तिकारी कवि थे, जिन्होंने समकालीन परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द किया। तद्युगीन परिस्थितियों में समाज में प्रचलित परम्पराओं और विचारों का प्रभाव इस स्वर में समाहित था। इन सन्त कवियों का काव्य और जीवन चित्रांकन और चित्रांकन से पूर्व उनकी सामयिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना समुचित होगा।

सामाजिक परिस्थितियां :-

सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियां विशेष रूप से सहायक होती हैं। समाज एक ओर धर्म से जुड़ा होता है तो समाज भी उच्छृंखलता की सीमा पार कर जाता है और यह स्वाभाविक भी है। तत्कालीन शासकों के घोर अत्याचारों के कारण हिन्दुओं में असुरक्षा की भावना व्याप्त हो चुकी थी। उनकी प्रतिष्ठा का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। मुस्लिम शासक विलास में डूबे हुए थे। शासक और शासित दो वर्ग बन चुके थे। हिन्दू जनता शासकों के अन्तर्गत थी। मुस्लिम शासक जनता की ओर ध्यान न देकर सुरा-सुन्दरी में डूबा हुआ था। मुसलमानों को अधिक वैभव और सम्मान प्राप्त था। हिन्दू गरीब और अभिशप्त जीवन जीते थे, वे हिन्दुओं का कतई ध्यान नहीं रखते थे। उनकी अवस्था इतनी शोचनीय थी कि वे उन्नति नहीं कर पा रहे थे। निम्न जाति के लोगों को हेय और घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उनका मन्दिरों में प्रवेश वर्जित था। जाति प्रथा और रूढ़िवादिता जोरों पर थी।

संत कबीर और गुरु रविदासजी के समय में समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान, इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यवहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही असत्य एवं मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे। सभी क्षेत्रों में काली लकीरें दिखाई देने लगी थीं। इसी के फलस्वरूप जाति देश में सर्वत्र अस्त व्यस्तता और विश्रृंखलता फैली हुई थी।

हिन्दू[1] समाज की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक थी। यवनों के देश में विजयी जति के रूप में बस जाने पर हिन्दू जनता विजित जाति होने के कारण कुछ हेयता और निराशा की भावना का अनुभव करने लगी थी। यवन बादशाहों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचार तथा क्रूरता आदि दानवी वृत्तियों ने हिन्दू जाति को और भी हेय बना दिया। उनमें अब न तो स्वाभिमान ही रह गया था और न आत्म प्रतिष्ठा की भावना ही। धर्मान्ध मुसलमान बादशाहों द्वारा अपने सामने अपने उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ा जाता देख उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चला, साथ ही मूर्ति पूजा और बहु देववाद के प्रति भी उनकी श्रद्धा बहुत कम हो गई थी। देश में निराशावाद के पैर दृढ़ता से जम गए थे।

वर्णाश्रम व्यवस्था हिन्दू धर्म का दृढ़ स्तम्भ है। यवनों के प्रारम्भिक आक्रमणों के साथ-साथ यह स्तम्भ भी दृढ़तर होता गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेदभावना और भी अधिक दृढ़तर होती गयी। द्विज लोग शूद्र और म्लेच्छों की छाया से घृणा करते थे। जो भी हो संत कबीर के समय में इस भेद-भाव के फलस्वरूप विरोध की भावना भी प्रबल होती गई।

गुरु रविदास और संत कबीर जी के समय में हिन्दू समाज अपनी घोर हीनावस्था में था। इसमें न तो किसी प्रकार का उत्साह अवशेष रह गया था और न कोई स्फूर्ति ही। उसमें शिक्षा और सभ्यता दोनों का अभाव था।

---

1. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, पृष्ठ- 79

यवनों के भावों और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था । हिन्दू संस्कृति और भाषा दोनों ही पूर्णतया उपेक्षित हो चली थीं । साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था । समुचित शिक्षा के अभाव में अनेक प्रकार के अंध-विश्वास और आडम्बर समाज में प्रचार पाते चले जा रहे थे । धर्म के ठेकेदारों की तूती बोल रही थी । धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुप्रथाएं फैल गई थीं । हिन्दू समाज के इस विकृत रूप के प्रति इन कवियों की आत्मा विद्रोह कर उठी । उनकी वाणी में इस विद्रोह भावना की अच्छी अभिव्यक्ति मिलती है ।

यवन समाज की दशा हिन्दू समाज से भी अधिक शोचनीय थी । यवन विजयी जाति होने के कारण अत्यन्त अभिमानी और वैभवशाली थे । धीरे-धीरे वे अपने प्राचीन आदर्शों से पतित होने लगे । यवन जाति अत्यन्त आचरण भ्रष्ट हो चली थी । बड़े-बड़े यवन सामन्त अब प्रसिद्ध योद्धा न होकर पदाभिलाषी अमीर भर रह गए थे । उनमें विलासप्रियता तो कूट-कूट कर भरी थी । मद्यपान और द्यूतक्रीड़ा तो उस युग की साधारण दुर्बलतायें थी । छल-कपट और जालसाजी इत्यादि की भी उस युग में कमी न थी ।

नारी की दशा शोचनीय थी । उसे भोग की वस्तु समझा जाता था । वह पुरुष के हाथ की कठपुतली बन गई थी । नारी वर्ग अपने सतीत्व की रक्षा के लिए चिन्तित रहता था । बाल-विवाह का भी प्रचलन था । वे न तो पूजा-पाठ कर सकती थीं और न ही पढ़-लिख सकती थीं ।

मध्ययुगीन भारतीय समाज का वातावरण अनेक प्रकार के दुर्गुणों से दूषित था । समाज के ठेकेदार बने ब्राह्मण, मुल्ला, पुजारी लोगों को दिग्भ्रमित कर रहे थे ।

इस अराजकता भरे युग में सारा समाज अस्त-व्यस्त और छिन्न-भिन्न था। हेय समझी जाने वाली जतियों के भीतर रोष और आक्रोश का लावा उबल रहा था। गुरु रविदासजी और संत कबीर जैसे सेतु इस रोष को दिशा दे रहे थे। इन्होंने जाति प्रथा और ऊंच-नीच का विरोध किया। पंडितों, मुल्लाओं को उपहास उपदेश देते हुए कहा[2,3]। उन्होंने कहा कि जब सबकी उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है तो फिर ब्राह्मण और शूद्र का भेद-भाव कैसा ? उन्होंने अपनी वाणियों में भेद-भाव का विरोध करते हुए तीखी कटूक्तियां कही हैं। उन्होंने जहां हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक वैषम्य एवं बाह्याडम्बरों का विरोध किया, वहीं मुस्लिम समाज की दुर्बलताओं और मिथ्याडम्बरों की ओर भी संकेत किया। दोनों के बीच साम्यता स्थापित करने की चेष्टा की। इन दोनों संतों ने मात्र मानव धर्म को एक जाति का माना और मानव धर्म को ही मूल स्वर के रूप में स्वीकार किया। इनके जीवन का सार केवल सत्य था। इसलिए उन्होंने कठोर स्तरभेद की प्रतिक्रिया में सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध विद्रोह की सबल भूमि तैयार की। उन्होंने[4] जातिगत और कुलगत अभिमान एवं उनसे उत्पन्न ऊंच-नीच के भेदभाव को मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके सर्वदा ही सामाजिक साम्य के आदर्श की स्थापना का लक्ष्य प्रस्तुत किया।

---

2. कैसौं कहा बिगारिया, जे मूंडै सौ बार। कबीर ग्रन्थावली, भेष को मन को काहे न मूंडिये, जामें विषै विकार।। अंग, साखी - । 1.

3. थोथा मन्दिर भोग विलासा, थोथी ज्ञान देव की आसा।' संत रविदास और उनका काव्य, पद सं0 - 58.

4. एक जोति ते सब उत्पन्ना को बाहमन को सूदा।' कबीर ग्रन्थावली, पद सं0 57.

राजनीतिक परिस्थितियां :-

संत कबीर और गुरु रविदास जी का आविर्भाव एक ऐसे युग में हुआ जबकि सारा राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से पतनोन्मुख हो रहा था। भारत में चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में तुगलक बादशाहों का प्रभुत्व था। ऐतिहासिक दृष्टि से संत कबीर और गुरु रविदास का जीवन-काल फिरोज़ तुगलक (सन् 1351-1388) से लेकर इब्राहीम लोदी (1517 से 1526) के समय में माना गया है। इसी बीच 1397 में तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली की नींव हिला दी थीं। विक्रम की 15वीं शताब्दी में तुगलक, सैयद और लोदी राजवंशों ने उत्तरी भारत पर शासन किया। मुहम्मद बिन तुगलक से लेकर इब्राहीम लोदी राजवंशों ने उत्तरी भारत पर शासन किया। मुहम्मद बिन तुगलक से लेकर इब्राहीम लोदी तक सोलह शासक दिल्ली के तख्त पर बैठे और उन्होंने अपने राज्यकाल तक शासन व्यवस्था के बदले अधिकतर आक्रमण और युद्ध ही किए।[5]

हमारे इन संतों के काल में भारतीय इतिहास का राजनीतिक क्षितिज संहारक युद्धों की प्रचंड विभीषिका, सर्वग्राही अराजकता तथा असुरक्षा की भयावह स्थिति से क्षुब्ध था। यद्यपि सन्तों को राजनीति से कोई सरोकार नहीं था तथा भौतिक सुखों से कोई मोह नहीं था, फिर भी समसामयिक घटनाओं की ओर से पूर्णतः विलग तथा उदासीन भी नहीं रह सके। ये विवेकशील सन्त राजनीति में सक्रिय भाग न लेते हुए भी इस आग्रह के हामी हैं कि इस युग के शासकों के आचरण और नीति का समाज पर कितना घातक दुष्प्रभाव पड़ रहा था। इन संतों द्वारा अपने काव्य में

---

5. डा० गणपति चन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ -62।

माया के माध्यम से ' कनक और कामिनी '[6] के प्रति व्यक्त किए गए तीव्र रोष एवं अस्वीकार के भाव को तत्कालीन शासन के वैभव विलास और आचरण के प्रति व्यक्त भाव को विद्रोह के प्रतीक के रूप में भी गृहीत किया जा सकता है ।

गुरु रविदास जी और संत कबीर से पहले भारत पर जो आक्रमण किए गए वे भारतीय पराभव के रोमांचक अध्याय हैं । इस समय तक पूरे उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों के पांव पूर्णरूपेण जम चुके थे । मुसलमान अपने धर्म के प्रचार को पवित्र और हिन्दुओं के धर्म का विनाश करना ही अपना कर्तव्य समझते थे ।

भारत में हूणों से भी अधिक नर-संहार मुसलमानों के हाथों से हुआ था । धन लूटना, धार्मिक स्थानों को ध्वस्त करना, नारियों के सतीत्व को भ्रष्ट करना और इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिए इतर धर्मावलम्बियों को विवश करना, उस समय के क्रूर शासकों और उनके मन्त्रियों की दैनिक चर्या थी ।[7] भारतीय जनता नित्य-प्रति होने वाले आक्रमणों से प्रकंपित थी ।

ऐसी स्थितियों में जनता शान्ति और सद्भाव के लिए तड़प रही थी । हिन्दू और मुसलमान फिर भी एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर

---

6. डा० चन्द्रदेव राय - कबीर और रैदास एक तुलनात्मक अध्ययन :

' एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अगनि की झाल ।
दैवै ही तन प्रजलै, परस्यां हैव पैमाल । ' कबीर ग्रन्थावली साखी- 12

7. एस० आर० शर्मा -- भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास ।

रहे थे । उनमें प्रेम की आकांक्षा उत्पन्न हो गयी थी । कुछ सूफी संत और संत फकीर भी ऐसे थे जो दोनों में सौहार्द्रभाव स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे । इससे जनता को कुछ सम्बल मिला । गुरु रविदास जी और संत कबीर जैसे संतों ने - ' हिन्दू तुरक दुहु महि एके कहे कबीर पुकारो ।'[8] तथा ' कृष्णा करीम राम हरि लाघव जब लग एक न पेषा '[9] आदि कह कर हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक भेद-भाव और मनो-मालिन्य विद्वेष की गहरी खाई को पाटकर भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी थी ।

दक्षिण से धर्म की जो लहर उठ कर उत्तर भारत में आयी थी, वह सामान्य जनता के सन्तों के हाथ में आ गयी थी । वे धर्म और समाज को व्यवस्थित करने के लिए जन-भाषा में जागरण के गीत गाने लगे ।[10] मुसलमान नरेशों की असहिष्णु नीति का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़े बिना न रह सका । लोधी वंश के शासक तो विशेष रूप से असहिष्णु थे तथा मन्दिरों और मूर्तियों को ध्वस्त करने में ही उनकी राजनीति सक्रिय थी । इस आक्रोश से अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए तत्कालीन सन्तों ने अपने धार्मिक रूप को स्थूल होने से बचाया और मुसलमानी धर्म के निराकार और निर्गुण ईश्वरवाद के समक्ष उन्होंने अपने राम की कल्पना की तथा राम और रहीम व केशव, करीम को पर्यायवाची बना कर हिन्दुओं और मुसलमानों को निकट लाने का प्रयास किया ।

---

8. डा० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, रागुवासा , पद - 21 ।

9. रैदास जी की वानी , बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स , पृ० 12

10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

इन राजनीतिक परिस्थितियों [11] के फलस्वरूप भारतीय जीवन और समाज में निम्नलिखित प्रभाव दिखाई पड़ने लगे :-

1. धर्म सुधार की भावना जागृत हुई। उसी के फलस्वरूप गोरखनाथ जी ने पंथ चलाया। दक्षिण में लिंगायत और सिद्धा आदि पंथों का भी उदय इसी धर्म सुधार-भावना के कारण हुआ था। इन सब का लक्ष्य हिन्दू धर्म और इस्लाम में सामंजस्य स्थापित करना था। संत कबीर की विचार धारा भी ऐसा ही लक्ष्य लेकर चली थी।

2. पर्दा-प्रथा समाज में दृढ़ होती चली गई। कुछ तो मुसलमानों की देखा-देखी और कुछ इस भावना से कि मुसलमान, स्त्रियों को देख मोहित हो बलात्कार न कर बैठें, हिन्दुओं में भी पर्दा-प्रथा का प्रचार बढ़ता गया।

3. हिन्दू समाज में निरुत्साह और निराशा फैल गई। इसके फलस्वरूप धर्म की ओर उनकी अभिरुचि बढ़ने लगी। धर्म भी सगुणोपासना में असमर्थ होने के कारण निर्गुणोपासना की ओर झुका।

4. हिन्दू राजनीति से उदासीन हो चले। उनका जीवन दारिद्र्य और निराशा में ही बीतने लगा। इसी एकान्तिका और निवृत्यात्मकता से प्रेरित हो उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की।

---

11. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचार धारा, पृ० -78-79.

आर्थिक परिस्थितियां :-

इस काल की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, विषम तथा जटिल थी। वास्तविकता तो यह थी कि इन दिनों धन का अभाव तो नहीं था परन्तु धन का विभाजन ठीक नहीं था। एक ओर जहां सामन्त वर्ग धन-धान्य से परिपूर्ण था तथा धन के उन्माद में चूर था। वहीं दूसरी ओर निचले तबके का व्यक्ति धन का अभाव होने के कारण अत्यन्त कठिनाई से अपने दिन व्यतीत कर रहा था। विशेषकर हिन्दू जनता के पास तो इतना धन छोड़ा ही नहीं जाता था कि जिससे वे अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठा सकें। विलासिता की बात तो दूर थी। वे न तो ठीक से पहन-ओढ़ सकते थे और न ही हथियार बांध सकते थे।[12] शासकों की मांगों ने सर्वसामान्य दैनिक जीवन को अत्यन्त दयनीय बना दिया था।

यह वह समय था, जब समाज द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले साधनों का बाहुल्य था। व्यवसाय[13] द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले कुम्हार तथा माली, लुहार, चर्मकार, बनजारा आदि समाज में वर्तमान थे। किन्तु श्रमिकों से बलात् बेगार ली जाने वाली क्रूर प्रथा की कटु विवशता किसी भी विचारशील व्यक्ति के लिए असहनीय थी।

इन संत कवियों के समक्ष समाज का वह विषम आर्थिक ढांचा विद्यमान था, जिसमें एक ओर विलासिता का साम्राज्य था तो दूसरी ओर साधारण जनता की करुणामयी पुकार, जो इन्हें आर्थिक

---

12. एस० आर० शर्मा, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृष्ठ -209।

13 संत रविदास और उनका काव्य, पद सं० - 42,
(स्वामी रामानन्द शास्त्री, वीरेन्द्र पाण्डेय)

विषमता के आधार पर निर्मित समाज-व्यवस्था के विरोध में तीव्र विरोध का भाव व्यक्त करने की प्रेरणा दे रहा था। परिणामस्वरूप उनका काव्य जहां ऐश्वर्य की क्षणभंगुरता तथा विलासिता के उपहास से गूंजा, वहीं इनकी रचनाओं में धनी-निर्धन के बीच दुर्भाव के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव भी व्यक्त हुआ।[14]

इस परिस्थिति में जन-सामान्य की सुख-शान्ति के लिए सब प्रकार की विलासिता और प्रलोभन से परे रह कर संतोष को ही सबसे बड़ा धन मानने[15] का सन्देश प्रदान करने से बढ़ कर अधिक उपयोगी और जीवन्त सम्बल हो ही क्या सकता था।

धार्मिक परिस्थितियां :-

यवनों के अत्याचार और राज्य-लिप्सा ने हिन्दू राजाओं की शक्ति को पूर्णतया जर्जरित कर दिया। वीरता की यदि कोई चिनगारी उदय भी हुई तो वह या तो स्वयं बुझ गई या बुझा दी गई। हिन्दुओं के मानवी अधिकार भी छीन लिए गए। उन्हें न तो जीवन सुख से बिताने की आज्ञा थी और न स्वतन्त्रतापूर्वक उपासना ही करने की। आत्मोन्नति स्वदेशोन्नति तथा स्वधर्मोन्नति के मार्ग से ढकेले हुए हिन्दू आत्म-रक्षा के लिए ईश्वर की शरण में आ गये।

---

14. निर्धन आदर कोई न देई।
लाख जतन करे ओहु चित न धरेई।
जो निर-धन सर-धन के जाई।
आगे बैठा पीठ फिराई॥ - कबीर ग्रन्थावली, पद - 130

15. जो कछु मिले आन आखत जूं सत दारा सिर मेले - रैदासबानी से पद - 15

सन्त कबीर और गुरु रविदास जी के युग में भारतीय धर्म-व्यवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त एवं विश्रृंखल थी । ' अपनी-अपनी ढफली और अपना-अपना राग ' वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ हो रही थी । मध्ययुगीन[16] भारत के दो प्रमुख धर्म थे -- हिन्दुत्व और इस्लाम । इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का भी विकृत रूप परिलक्षित होता है । सिद्धों और नाथों के सम्प्रदाय भी यदा-कदा अपने अस्तित्व को दिखाते थे । इसी समय गुरु-नानक के क्रान्तिकारी चिन्तन पर एक नया धर्म निर्माणाधीन था जो कि गुरु अर्जुन देव के समय सिख धर्म के नाम से पुकारा जाने लगा । हिन्दू धर्म अपने भीतर विद्यमान विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक संप्रदायों के संघर्ष और उनके दुष्परिणामों से त्रस्त तो था ही, उसे इस्लाम जैसे एक कट्टरपंथी विदेशी धर्म से भी टक्कर लेनी पड़ी । इसके पहले के विधर्मियों को तो हिन्दू धर्म ने आत्मसात कर लिया था, परन्तु इस्लाम का तूफानी प्रवाह अभेद्य था । उसे सैनिक शक्ति का सम्बल प्राप्त था । अतः इस्लाम तलवार की धार के बल पर बाढ़ के जल की भांति अति द्रुत गति से फैल रहा था । ऐसी परिस्थिति में हिन्दू धर्म के प्रसार का प्रश्न ही नहीं उठता था । इस समय त्रस्त एवं हताश हिन्दू जन किसी उदार धार्मिक विश्वास की तरल छाया में ही शान्ति पा सकता था ।'

संत कबीर और गुरु रविदास जी जैसे संत कवि युग की इस जटिल धार्मिक परिस्थिति के लिए अत्यन्त चिन्तित थे । वे इस विकट समस्या के स्थायी समाधान के प्रति जागरूक थे । उनसे धर्म की यह विद्रूपता देखते नहीं बनती थी । इस विषाक्त वातावरण में उन्हें हरि-भजन में आशा की

---

16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृष्ठ - 10 .

ज्योति दिखाई दी। परन्तु वातावरण के अनुकूल भक्ति के स्वरूप का निर्धारण भी एक अत्यन्त दुरुह कार्य था। संत कबीर आदि भक्तों ने निर्गुण भक्ति साधना को समादृत किया था। क्योंकि उसमें युग की मांग को पूरा करने की क्षमता थी और मानव धर्म की प्रतिभा को प्रतिष्ठित करने की योग्यता थी।[17]

धर्म के विकृत रूप ने संतों को कुछ कहने के लिए सबसे अधिक प्रेरित किया। उनकी वाणी का अधिकांश भाग धार्मिक विकृतियों की धज्जियां उड़ाने में नियोजित हुआ है। इन संतों की दृष्टि में इनके युग का एक भी धर्म विकृति-मुक्त नहीं था। कुत्सित प्रथाओं, जीर्ण रूढ़ियों मिथ्याचारों से बंध प्रेरित विश्वासों ने मानव धर्म के मौलिक स्वरूप का विध्वंस किया था।

संत कबीर व गुरु रविदास जी आदि संतों ने जिस संत-धर्म का प्रवर्तन किया था, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु इसके मत में विविध दार्शनिक विचारों का ऐसा समुच्चय है कि उसे किसी एक दार्शनिक धारा के अन्तर्गत रखा नहीं जा सकता। संत मत का अपना एक विशिष्ट धरातल है। दार्शनिक विचार की आधार शिला के बिना तो धर्म की एकता ही प्रतिष्ठित नहीं हो सकती और इस प्रकार धार्मिक आधार के रूप में कार्यान्वित किए बिना दर्शन की स्थिति भी निष्फल ही है। धर्म के साथ सामंजस्य स्थापित रखना भारतीय दर्शन की महती विशिष्टता है। धार्मिक परिस्थिति का संतों पर जो प्रभाव पड़ा

---

17. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, पृ० 463.

है उनमें उस समय के प्रचलित जैन और बौद्ध दर्शन, शैवमत, नागपंथ, वैष्णवमत, इस्लाम एवं सूफी दर्शन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

जैन एवं बौद्ध दर्शन :-

वेद विरोधी धर्मों में बौद्ध और जैन दर्शन ही प्रमुख थे । बौद्ध दर्शन की विकृतियों ने वज्रयान और सहजयान जैसे सम्प्रदायों को जन्म देकर भी अवकाश ग्रहण नहीं किया था । प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ-पन्थ आदि अनेक मतवाद प्रचलित हो गए थे । इधर जैन धर्म के अन्तर्गत भी सम्प्रदायों का उदय हो गया था । उनकी स्पर्धा की भावना में कटुता के फल लग कर न केवल धर्म को निरस्त बना रहे थे अपितु सामाजिक जीवन को संकीर्ण बना रहे थे जबकि बौद्धों की अहिंसा, हिंसा का रूप ले चुकी थी, जैनों की अहिंसा ने अपने तात्त्विक सौन्दर्य का विसर्जन नहीं किया था । हाँ, वह उपेक्षा और रूढ़ियों के हाथों किसी अंश तक उपहास्य अवश्य हो गई थी । यों तो जैन धर्म भारत भर में फैला हुआ था और उसके अनुयायी किसी न किसी अंश में कम नगरों में तो मिलते ही थे, किन्तु राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में उनका बाहुल्य था ।[18]

डा० हरवंशलाल शर्मा बौद्धमत के सार तत्व को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं --

" बुद्ध के विचार (प्रतीत्य समुत्पाद) के अनुसार सर्वत्र कारण कार्य का ही नियम चल रहा है । कारण प्रभाव को जन्म देता है और

---

18. डा० महेन्द्रनाथ सिंह, बौद्ध एवं जैन दर्शन , पृ० 2.

प्रभाव प्रत्याकर्तित रूप में रूपान्तरित हो जाता है । इसके अनुसार सृष्टि की रचना का यह उत्तर दिया गया है कि जगत् की उत्पत्ति बिना किसी ज्ञान प्रारम्भ के है और कारण और प्रभाव का नियम शाश्वत है । बौद्धों के अनुसार समस्त अस्तित्व निरन्तरधारा है , जो तत्वों से उत्पन्न होती है । इसलिए वे जगत की क्षणिक एवं तात्कालिक स्फुरणाओं की एक श्रृंखला मानते हैं ।[19]

अतः सन्त वाणी पर जैन एवं बौद्ध दर्शन का यत्किंचित प्रभाव देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन संतों के काव्य में जैन एवं बौद्ध धर्म के जिन सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है उनका पूरा-पूरा स्त्रोत जैन एवं बौद्धमत ही है ।

शैवमत :-

मध्ययुग के प्रभावशाली दर्शनों में शैव-दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है । इस काल तक शैव-संप्रदाय भी अनेक शाखाओं में विभक्त हो चला था , जिनमें दो शाखाएं प्रमुख थीं -'कश्मीरी शैव मत' तथा 'वीर शैव मंती ।' कश्मीरी शैवमत कश्मीर में तथा वीर शैव मत का प्रचार दक्षिण में ही अधिक था । इस मत[20] का दार्शनिक पक्ष उतना महत्वशाली नहीं था जितना धार्मिक पक्ष । इस मत में शिव की कल्पना ईश्वर के रूप में की गयी है । यह मत बहु देववाद का विरोधी है । इस मत के अनुयायी ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आदि किसी मत पर भी विश्वास नहीं करते हैं । ये लोग शिवलिंग की पूजा में विश्वास करते हैं ।

---

19. डा० हरवंशलाल शर्मा, भारतीय दर्शन की परंपरा और आदि ग्रंथ, पृ०- 22

20. डा० गोविन्द त्रिगुणायत - हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि - 188-189

वीर शैव मत का दूसरा नाम शक्ति विशिष्टाद्वैत भी है। शक्ति विशिष्टाद्वैत शब्द का अर्थ है शक्ति विशिष्ट जीव और शक्ति विशिष्ट शिव। इन दोनों का सामरस्य अर्थात् परस्पर एकाकार होना। इस मत में शक्ति और शिव का नित्य सम्बन्ध माना जाता है। इस शक्ति को विमर्श शक्ति कहते हैं। यदि शिव में विमर्श शक्ति न रहे तो वह जड़वत् हो जाये। अन्य दर्शनों की भांति शैव मत के मत का लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में लीन करना है। इस भावना ने इस दर्शन वालों को आत्मा और परमात्मा में भेदीकरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। वीर शैवमत और कश्मीरी शैवमत ने तत्कालीन 'शैवमत' के आडम्बरों एवं कुरीतियों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की और एक अधिक परिशुद्ध, सरल और सारतः बुद्धि संगत संत के विकास का प्रयत्न किया। यह मत[21] ब्राह्मणों के वर्णाश्रम धर्म का भी विरोधी था। लिंगायत सम्प्रदाय में मदिरा और मांस का निषेध था। आत्म संयम पर विशेष बल दिया जाता था। विधवा विवाह का समर्थन किया जाता था। लिंगायत लोग बाह्याचार पर जोर नहीं देते थे और धार्मिक कार्यों में आडम्बर की निन्दा करते थे। क्योंकि इससे आत्मज्ञान की प्राप्ति में बाधा पड़ती है। सम्भव है 12वीं शती के कुछ पूर्व का यह लिंगायत मत इन संतों की वाणी में प्रतिपादित तीर्थ व्रत की व्यर्थता, इन्द्रिय-दमन, सामाजिक भेद-भाव, कामाचार आदि के विरोध का प्रमुख उत्स रहा हो।

संत कबीर[22] और गुरु रविदास जी जैसे संतों पर इस दर्शन के दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। एक मोक्ष-धारणा विषयक और दूसरा बिंदु धारणा सम्बन्धी। इस दर्शन के आचार्यों के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति

---

21. डा० यदुवंशी, शैवमत, पृ० - 160

22. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ० 187

के पश्चात् मुक्तात्मा को कहीं आना जाना नहीं पड़ता था । इनके मतानुसार अज्ञान-भेदन करने वाली स्वशक्ति का उन्मेष ही मोक्ष है । मोक्ष संबंधी इस धारणा की अभिव्यक्ति हमें कहीं-कहीं संतों की बानियों में मिल जाती है । ---

' कहै कबीर परम पद कहीं न जाऊं आऊं । ' (कबीर ग्रन्थ, पृ० 154)

जहां तक बिन्दु धारणा का सम्बन्ध है सन्तों ने उसकी अभिव्यक्ति अपने ढंग पर की है । वे नाद को ब्रह्मरूप कहते थे और जीव को बिन्दु रूप । उनकी धारणा का लक्ष्य इन दोनों में तादात्म्य स्थापित करता था । तादात्म्य स्थापित करने वाली इस साधना को उन्होंने नाद बिन्दु योग कहा है । वे नाद और बिन्दु दोनों की स्थिति शरीर के अन्तर्गत ही मानते हैं । यह बात उनकी बानियों से प्रकट है । उन्होंने नाद बिंदु में सेवक-सेव्य का भाव दिखलाया है - --

' नाद बिंदु को जूह होय, वे साहब वे सेवक जोय ।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस दर्शन का संतों पर व्यापक प्रभाव है ।

नाथ पन्थ :--

मध्यकालीन धर्मसाधनाओं में नाथ पन्थ बहुत महत्वपूर्ण है । भारतीय धर्म-साधना में नाथ पन्थ अनेक नामों से प्रसिद्ध है - गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में सिद्धमत, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत सम्प्रदाय और अवधूत मत इत्यादि नामों से इसका परिचय दिया गया है । इस पन्थ के अनुयायी जोगी, कनफटा, दर्शनी आदि के नाम से पुकारे जाते हैं ।

आलोच्य युग में नाथ पंथ की प्रभाव परकता इतनी प्रभावी हो चली थी कि न केवल हिन्दू मतानुयायी अपितु इस्लाम और सूफीमत के पोषक भी इसके सिद्धान्तों एवं साधना-प्रणालियों की ओर प्रवृत हो रहे थे। इस सम्प्रदाय की योग साधना की महत्ता को प्रायः सभी स्वीकारने लगे थे। इसकी यौगिक क्रियाएं एवं सिद्धियां लोगों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। इस पंथ में सामाजिक भेद-भाव का भी अभाव था। इसीलिए यह अवर्णों के लिए भी बहुत बड़े आकर्षण का विषय बन गयी थी।[23]

गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल बनाया उसमें एक ओर जहां ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहीं दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम, सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया था।

नाथ मत[24] मध्यकाल की सामान्य जनता में प्रचलित सभी साधना-पद्धतियों का एक अभिनव समन्वित रूप है। अपने समय की समस्त विचार-धाराओं और साधनाओं के सुन्दर तत्वों को स्वायत्त करने की प्रवृत्ति निर्गुण सम्प्रदाय में भी थी। यही कारण है कि निर्गुण सम्प्रदाय की प्रवृत्ति साम्य के कारण नाथ पन्थ के अत्यधिक समीप है। संत कबीर गुरु रविदास जी दोनों संत निर्गुण धारा के कवि थे इसलिए इन पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्होंने नाथ पंथ के कुछ सिद्धांतों

---

23. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० 91

24. पद्म गुरुचरण सिंह, संत रवि० विचारक और कवि, पृ० 71.

को यथावत् स्वीकार किया । उनमें से कुछ को संशोधित रूप में, जैसे इन्होंने नाथों की भांति निर्गुणवाद पर बल दिया, चारित्रिक उत्कृष्टता को महत्व दिया । उन्होंने साधना - पद्धति को स्वीकार नहीं किया ।

वैष्णवमत :-

मध्ययुग में वैष्णव धर्म का बहुत अधिक प्रचार और प्रसार था । अन्य मतों की अपेक्षा समाज में इसकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी । इसकी सरलता, सात्विकता पर संत कबीर और गुरु रविदास जी भी मुग्ध थे । वैष्णव मत की अधिकांश बातें संतों की रुचि के अनुकूल थीं । परन्तु धर्म की आचार प्रधानता उन्हें प्रिय नहीं लगती थी फिर भी वे उनसे प्रभावित थे । इस प्रकार वैष्णव मत का प्रभाव भी सन्त काव्य पर पड़े बिना न रह सका था । भक्ति[25] का प्रवाह जो दक्षिण से उत्तर तक प्रवाहित हुआ उसने समस्त उत्तर भारत को धर्म के क्षेत्र में भक्ति के प्रति आकृष्ट किया । ग्यारहवीं शताब्दी में नाथ-मुनियों ने भक्ति की दार्शनिक व्याख्या की और एक शताब्दी बाद रामानुजाचार्य ने अद्वैत के भीतर ही एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसमें जीव को ब्रह्म का एक विशिष्ट रूप माना गया । वैष्णवानुयायी मध्यकाल में भी विविध आडम्बरों के साथ-साथ अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे । जप, तप, अर्चना में लीन लोग वास्तविक भक्ति को भूल गए थे । बाह्याडम्बरों में सबका विश्वास जम गया था । संत कबीर और गुरु रविदास जी संतों ने कुछ तो उन मान्यताओं की पृष्ठभूमि में और कुछ मौलिक उद्भावनाओं के प्रकाश में अपनी निर्गुणोपासना को सरसित किया ।

---

25. डा० मलिक मुहम्मद - वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० -336

इस्लाम एवं सूफीमत :-

गुरु रविदास जी और संत कबीर के आविर्भाव काल तक इस्लाम धर्म की जड़ें गहरे पैठ चुकी थीं। मुसलमानों ने तलवार की धार पर हिन्दुओं में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इस काल में मुस्लिम विजय मात्र शासक की विजय न रह कर मुहम्मद साहब की विजय का प्रतीक बन गयी थी। मुस्लिम वर्ग ने हिन्दुओं को 'काफिर' की संज्ञा दे दी थी और काफिरों की हत्या करना धार्मिक दृष्टि से सम्माननीय समझा जाता था। इस्लाम धर्म का प्रभाव हिन्दू धर्म पर अधिक से अधिक पड़ा। संत कबीर और गुरु रविदास जी आदि संतों पर इस्लाम का प्रभाव नहीं पड़ा था। न ही उन्होंने अपनी वाणी में इस्लाम के प्रति आस्था या विश्वास व्यक्त किया है। इनका प्रमुख उद्देश्य तो केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना करना था। इसलिए उन्होंने दोनों ही धर्मों की कट्टरपंथी नीति और आचरणों को नकारा था। वे एक ओर तो मूर्ति पूजा के विरोधी थे तो दूसरी ओर उन्हें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास भी था।

सूफीमत का जन्म रूढ़िवादी इस्लाम की प्रतिक्रिया रूप से हुआ था। फिर भी इसके सिद्धान्तों का आधार इस्लाम का 'कुरान-शरीफ' ही था। अल्लाह के सम्बन्ध में सूफी विचारक भी सामान्य पन्थी मुसलमानों के जैसा 'एकेश्वरवाद' को मानते हैं। परन्तु सूफियों के लिए एकेश्वरवाद का अर्थ दूसरा है।

यह मानते हुए भी कि अल्लाह एक और अद्वितीय तथा निरपेक्ष है, सूफी यह कहते हैं कि दृश्यमान जगत, में परिव्याप्त एकमात्र वही सत्य है । उसी की एकमात्र सत्ता है जो पहले थी और भविष्य में भी रहेगी । कहने का अभिप्राय यह है कि सूफी विचारक आत्मा और परमात्मा में एकत्व को मानते हैं ।[26]

इस्लाम[27] के एकेश्वरवाद और वेदान्त के आत्मवाद का समझौता सूफियों के अद्वैतवाद में हो गया था । इधर सूफियों ने बौद्धों और शैवों से योग-साधना का रहस्य ग्रहण किया ।

गुरु रविदास जी और संत कबीर पर सूफी सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । कहीं-कहीं लोकप्रचलित प्रेम का अवश्य वर्णन मिलता है । लेकिन वहां भी एकत्व और एक ब्रह्म के ही दर्शन होते हैं । उन्होंने आत्मा और परमात्मा में अन्ततः कोई अन्तर नहीं माना है । प्रत्येक धर्म से जो भी अच्छा लगा उसे ग्रहण किया ।

निष्कर्ष :-

भारतीय धर्म साधना को सामान्यतः दो प्रमुख धाराओं में विभक्त किया जाता है - वैदिक धारा तथा अवैदिक धारा । अवैदिक धारा में चार्वाकों का नाम भी आता है । जैन और बौद्ध अवैदिक धारा में आते हैं । किन्तु चार्वाक मत का अधिक विकास नहीं हो सका है ।

---

26. रामपूजन तिवारी , सूफी मत : साधना और साहित्य पृष्ठ -251-252

27. --- वही ---- ---- ----- ----

संत कबीर और गुरु रविदास जी के युग तक आते-आते भारतीय चिंतन धारा की अनेक धाराओं का उद्गम तथा विकास हमारे सामने आ जाता है। संत कबीर[28] के युग में भारत दो भिन्न-भिन्न समाजों में विभक्त दिखाई पड़ता था -- एक भारतीय धर्म-साधना का पोषक था और दूसरा भारतीय धर्म-साधना का। भारतीय धर्म-साधना का पोषक समाज अनेक धर्मों और सम्प्रदायों से छत-विछत होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक एकता रखता था। किन्तु अभारतीय धर्म ने जो समाज तैयार किया था वह भारतीय समाज से एकदम भिन्न था। इसलिए देश में विरोधक वातावरण तैयार था। हिन्दू धर्म से सूफी मत की सहानुभूति अवश्य थी, किन्तु बिल्कुल वैसी-ही जैसी कि किसी वृक्ष के पार्श्व में उगी हुई एवं वृक्ष पर छायी हुई लता की, जो वृक्ष की पोषक शक्ति को स्वयं लेकर उसे हीन करने का प्रयास करती है।

हिन्दू सम्प्रदाय में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय थे, जिनमें वैष्णव, शैव और शाक्त प्रधान थे। इसके अतिरिक्त जैन, और बौद्धिक कर्म-काण्डी भी थे।

साहित्यिक सांस्कृतिक परिस्थितियां :-

इस काल तक संस्कृत, पाली, अपभ्रंश प्राचीन भाषाओं में भी साहित्य रचना की पूर्व परम्परा विद्यमान थी, किन्तु इस काल तक लोक भाषा में साहित्य सृजन जैसे कार्य को अधिक लोकप्रियता प्राप्त होने लगी

---

28. डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर एक विवेचन, पृष्ठ - 93, 100

थी । संस्कृत प्रधानतः सुशिक्षित समुदाय की ही भाषा बन चुकी थी । उनमें अधिकांश साहित्य उस कोटि का रचा जाने लगा था, जो उच्चवर्गीय शिक्षित समाज को ही लाभान्वित कर पाता था । संस्कृत साहित्य की इस जटिल विधानमयी परम्परा से अशिक्षित समझे जाने वाले संत कवियों को किसी प्रकार की अनुकूल प्रेरणा प्राप्त हो जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । यद्यपि प्राकृत भाषा का अधिकांश साहित्य समकालीन संस्कृत वाङ्मय के आदर्श पर रचा गया, किन्तु उसमें प्रणीत कथा-साहित्य एवं गाथा-साहित्य की सृजन परम्परा आलोच्य काल के उन सूफी कवियों के लिए अवश्य प्रेरणा-स्रोत बनी, जिन्होंने फारसी-मसनवी शैली में प्रेमाख्यानों की रचना का सूत्रपात किया । प्राकृत भाषा में प्रचलित मुक्तक छन्दों का सन्त कवियों की साखियों के स्वरूप पर प्रभाव पड़ना अधिक संभावित है । इसी प्रकार संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में निहित धार्मिक ज्ञान से भी वे लोग प्रभावित अवश्य रहे होंगे । यह[29] बात दूसरी है कि इनका यह धार्मिक ज्ञान श्रुत जन्य रहा होगा, न कि पुस्तक जन्य ।

यह वह समय था जब अरबी और फारसी जैसी मुस्लिम और विदेशी भाषायें भी मुस्लिम-धर्म-प्रचारकों एवं प्रबल आक्रामकों का वरद-हस्त प्राप्त करके साहित्य निर्माण के क्षेत्र में भी उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी । परन्तु अरबी यहां कभी सर्वस्वमान्य की माध्यम भाषा न होने के कारण संत काव्य पर अपना कोई स्पष्ट प्रभाव अंकित नहीं कर पायी । फारसी में अरबी की अपेक्षा एक उल्लेखनीय विशेषता यह आ गई थी कि इसके निर्माण में इस देश के निवासियों ने भी महत्वपूर्ण योगदान करना

---

29. संत कबीर, रागु बिलावलु , पद - 2
विदिआ न परऊ वादु नहीं जानउ ।

प्रारम्भ कर दिया था । इसलिए फारसी की साहित्यिक परम्परा तत्कालीन साहित्यिक वातावरण पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव अंकित करने में न्यूनाधिक समर्थ सिद्ध हो सकी ।

इस समय पूर्व में बंगाल एवं आसाम से पश्चिम में गुजरात एवं सिन्ध तक तथा उत्तर में कश्मीर एवं पंजाब से दक्षिण में उत्कल एवं महाराष्ट्र तक के विस्तृत क्षेत्र में प्रान्तीय भाषाओं में साहित्य-सृजन की बलवती प्रवृत्ति जागृत हो चुकी थी । संस्कृत एवं फारसी जैसी सुशिक्षित वर्ग की भाषाओं की अपेक्षा प्रचलित लोकभाषाओं को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की भावना बलवती हो उठी थी । जागृत लोक चेतना समाज के निम्नतम वर्ग को भी अपने उल्लास और अवसाद को व्यक्त करने की अनुकूल प्रेरणा प्रदान कर रही थी । अशिक्षित होने के कारण निम्नवर्गीय समाज के लोग काव्यशास्त्रानुमोदित विधानों के परिपालन की परिसीमा में आबद्ध होकर काव्य-रचना करने में असमर्थ थे । अतः ऐसे लोगों के लिए जन भाषाओं में साहित्य-निर्माण की अनुकूल स्थिति स्वयमेव उपस्थित हो गई थी ।

इस काल तक इस प्रवृत्ति को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो चली थी कि न केवल अशिक्षित अपितु शिक्षित एवं विशिष्ट वर्ग के साहित्यकार भी जन भाषा के माध्यम से अपने भावों को मूर्तिमान की ओर आकृष्ट होने लगे थे । संत कबीर जैसे लोग तो संस्कृत को 'कूपजल' और लोक भाषा को अप्रतिहत गति से प्रवाहमान 'सरिता का जल' कहने में भी नहीं हिचकते थे । लोक भाषा की प्रभाव - वृद्धि के साथ ही उसमें लोक तत्वों एवं लोक मान्यताओं की प्रतिष्ठा के लिए भी अनुकूल अवसर उपस्थित हो आया । फलतः तत्कालीन साहित्यिक वातावरण लोक भाषाओं, लोक गाथाओं और लोक गीतों की बहुसंख्यक रचनाओं से गूंज उठा और उनके जीवन्त माध्यम

से ऐसी लोकोक्तियों, मुहावरों, दृष्टान्तों, रूपकों, प्रतीकों आदि का सृजन हो सका, जिन से काव्य जगत की भावात्मकता को झंकृत करने में भरपूर बल मिला। कभी-कभी तो हमारे संतों ने इन साधारण प्रतीकों एवं दृष्टान्तों के माध्यम से दर्शन के गूढ़तम रहस्यों को भी अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य बना दिया। जबकि इनका विवेचन और प्रतिपादन गहन अनुशीलन एवं शास्त्र मंथन के लिए संभव नहीं था।

लोक भाषा को व्यापकता प्रदान करने में लोकोक्तियों, मुहावरों और सामान्य जीवन की अभिव्यक्तियों से भी बढ़ कर मूल्यवान योगदान प्रस्तुत किया लोक छंदों के सारल्य ने। इस काल के संत कवियों के काव्य में इन छंदों का विनियोजन दर्शनीय है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह युग सांस्कृतिक संघर्ष का युग था। युग-प्रवृत्तियां ऐसे वातावरण की प्रतीक्षा कर रही थीं, जिसमें सर्व सामान्य के मध्य आदान-प्रदान की संभावनायें विकसित हों और दलित एवं उपेक्षित को भरपूर सम्बल प्राप्त हो सके।

संत कबीर और गुरु रविदास जी आदि संतों के पूर्व की काव्य-धारा में जीवन और समाज में समरसता लाने वाली प्राण-शक्ति का अभाव था। हमारे संतों की वाणी इसी युग की प्रखर आवश्यकता की पूर्ति का विधान ले कर प्रस्फुटित हुई थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन संतकवियों का युग संघर्ष का युग था। यह युग ऐसे वातावरण की प्रतीक्षा कर रहा था, जो सर्वसामान्य में सामंजस्य स्थापित कर सके, दीन-हीन और उपेक्षित वर्ग को एक मजबूत आश्रय मिल सके। ऐसे समय में सांस्कृतिक समन्वय के रूप में

संत कबीर और गुरु रविदास जी का आगमन हुआ । इनके लिए जैसा तीर्थ व्रत था वैसा ही रोजा-नमाज । इन्होंने सब धर्मों की विशेषताओं को स्वीकार किया । इन्होंने सामाजिक व धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठ कर सामंजस्य, एकता तथा सहिष्णुता का संदेश दिया तथा हिन्दु-मुसलमानों के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया ।

मध्ययुग में संत कबीर और गुरु रविदास जी ने भारत का जितना उपकार किया था, उतना आज तक कोई विचारक न कर सका । इन्होंने साधारण जनता में एक भेद-भाव विहीन ऐसे सहज धर्म की प्रतिष्ठा की, जिसकी सीमाएँ सब प्रकार के बन्धनों से निर्मुक्त थीं । इसी के परिणाम-स्वरूप साधारण जनता में भी स्वतन्त्र रूप से सोचने की शक्ति जागृत हुई । संत कबीर का कार्य केवल उन्हीं तक सीमित न रहा । उसके पश्चात् भी उनका कार्य उनके शिष्यों द्वारा और भी दृढ़ता से सम्पन्न हुआ । इसी के फलस्वरूप उनकी विचारधारा से अनुप्राणित अनेक पन्थों का प्रवर्तन हुआ और अनेक विचारकों का जन्म भी । इन विचारकों में नानक, दादू, धरनीदास, आदि प्रमुख हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विपरीत परिस्थितियों में भी संत कबीर और गुरु रविदास जी ने अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया । उनकी विचारधारा मध्ययुग के लिए अनुपम देन थी । यह वह सुधा थी जिसे पान कर पतित भी उठ खड़े हुए और निराश जनता आशा से नाच उठी ।

द्वितीय अध्याय

गुरु रविदास जी और संत कबीर
जीवन वृत
-0-0-0-

समय की आवश्यकताओं के फलस्वरूप सन्तों तथा महापुरुषों का जन्म तो होता है, परन्तु मतभेदों के कारण उनकी जन्मतिथि का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। अनेक किंवदन्तियां प्रकाश में तो आती हैं, परन्तु उनमें से किसी एक पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। गुरु रविदास जी और संत कबीर हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठतम् विभूति हैं। वे वाणी के उन वरद-पुत्रों में से हैं, जिनकी प्रतिभा के प्रकाश से हिन्दी साहित्याकाश चिर आलोकित रहेगा। संत कबीर और गुरु रविदास जी की वाणी पर उनके अन्तर्जगत और बहिर्जगत, दोनों की छाया पड़ती है। उनकी मानसिक वृत्तियों का, उनके स्वभाव का, उनकी परिस्थितियों का उनके काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी कवि की वाणी के प्राण से परिचय प्राप्त करने के लिए उस कवि के जीवन तथा व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

संत कबीर तथा गुरु रविदास जी का अभी तक कोई प्रामाणिक जीवन-वृत नहीं लिखा गया है। भारतीय संत सदैव से ही परमार्थ प्रिय रहे हैं। वे प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष से अधिक प्रेम करते हैं। ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो जाना ही उनका लक्ष्य रहा है। अपने इस उद्देश्य

की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील साधक अपने को कभी भी ब्रह्म से परे नहीं देखना चाहता। 'नाम' और 'ध्यान' में वह इतना निमग्न हो जाता है कि उसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व का ध्यान ही नहीं रहता। अपनी विज्ञप्ति की बात का प्रश्न तो दूर रहा। कदाचित् यही कारण है कि हमें प्राचीन कृषियों, विचारकों, भक्तों एवं कवियों के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में बहुत ही कम सामग्री प्राप्त हो सकी है। संत शिरोमणि गुरु रविदास जी के बारे में तो जानकारी के प्रामाणिक तथ्यों का सर्वथा अभाव रहा है।

किसी भी महापुरुष[30] के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में खोज करने के लिए हमारे पास दो ही प्रमुख साधन हैं -- अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य। अन्तः साक्ष्य के अन्तर्गत वह समस्त सामग्री आती है, जिसमें उस कवि ने अपने सम्बन्ध में स्वयं परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप में बताया हो। बाह्य-साक्ष्य के अन्तर्गत उसके सम्बन्ध में उसके सम-सामयिक तथा परवर्ती विद्वानों द्वारा कही अथवा लिखी गई सामग्री आती है। प्रचलित कथायें व किंवदन्तियां आदि की भी गणना बाह्य साक्ष्य में होती है। बाह्य साक्ष्य की अपेक्षा अन्तः साक्ष्य ही अधिक महत्वपूर्ण होता है। बाह्य साक्ष्य में समसामयिक विद्वानों का कथन अधिक प्रामाणिक और महत्वपूर्ण माना जाता है।

जन्मतिथि :-

संत कबीर के जीवन से सम्बन्धित बाह्य साक्ष्य की सामग्री के रूप में हमें तीन चीजें मिलती हैं - -

---

30. संत रविदास और उनका काव्य - पृष्ठ - 49

लेखक - स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय

(क) वे प्राचीन ग्रन्थ, जिसमें संत कबीर दास जी का कुछ-न-कुछ विवरण प्राप्त होता है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के विद्वानों ने प्रायः इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर उनका जीवन-वृत्त लिखा है।

(ख) संत कबीर से सम्बन्धित स्थान और वस्तुयें।

(ग) जन - श्रुतियां।

(क) प्राचीन ग्रन्थों के रूप में प्राप्त बहिर्साक्ष्य सामग्री :-

(1) नाभादास कृत भक्तमाल - -

इस ग्रन्थ का रचनाकाल लगभग 1885 माना जाता है। इस ग्रन्थ में संत कबीर के सम्बन्ध में केवल दो पद दिये हैं। इनमें से एक छप्पय तो संत कबीर पर लिखा गया है और दूसरा श्री रामानन्द के सम्बन्ध में। दोनों से संत कबीर और श्री रामानन्द का सम्बन्ध स्पष्ट होता है -

1. "कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रमषट दरसनी ।।
भक्तिविमुख जो धरम ताहि सधरम करि गायो ।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।।
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी ।
पच्छ पात नहि वचन सबहि के हित की भाखी ।।
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दरसनी ।।"[31]

---

31. डा० राम कुमार वर्मा - संत कबीर, प्रस्तावना, पृ० 35

2. श्री रामानन्द रघुनाथज्यौं दुतिया सेतु जगतरन कियौ ।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि ।।
पीपा भ्रानन्द रैदास धन्नासेन सुरसरि की धरहरि ।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर ।।
विश्व मंगल आधार स्वानिन्द अशधा के आगर ।
बहुत काल वपु धारि के प्रनत जगतकौ पार दियौ ।।
श्री रामानन्द रघुनाथज्यौं दुतिय सेतु जगतरन कियौ ।[32]

प्रथम छप्पय से केवल संत कबीर के निष्कपट जीवन और उनकी कथन शैली पर ही प्रकाश पड़ता है । उनके जीवन से सम्बन्धित किसी विशेष ज्ञातव्य तथ्य का पता नहीं चलता, दूसरे पद से श्री रामानन्द और संत कबीर का गुरु शिष्य का सम्बन्ध पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है । भक्तमाल के आधार पर एक बात और निश्चित की जा सकती है कि संत कबीर दास जी ग्रन्थ के रचना-काल सं० 1612 के पूर्व ही अपना कार्य-काल समाप्त कर चुके होंगे ।

(2) भक्तमाल की टीका - -

सं० 1702 में सन्त प्रवर प्रियादास जी ने भक्तमाल की एक विस्तृत टीका लिखी थी । इस टीका में संत कबीर जी का जीवन-वृत्त विस्तारपूर्वक लिखा गया है । उससे ज्ञातव्य बातें स्पष्ट होती हैं --

1. संत कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे । उसने उन पर अत्याचार भी किये थे ।

2. संत कबीर श्री रामानन्द के शिष्य थे ।

3. कबीर दास जी रामानन्द जी के आशीर्वाद के फलस्वरूप एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

(3) रैदास जी की बानी - -

गुरु रैदास जी ने अपनी बानियों में दो बार संत कबीर का उल्लेख किया है ।

(क) " निरगुन का गुन देखो आई ।
देही सहित कबीर सिधाई ।।"[33]

(ख) जाके ईंदि बकरीदी कुल गउरे बध करहि ।
मानि आहि सेष सहीद पीरा ।
जाके बापि वैसी करि पूत ऐसी सरी,
सिहुरे लोक परसिस कबीरा ।।"[34]

रैदास जी की बानी में पाए जाने वाले इन दोनों अवतरणों से केवल दो बातें स्पष्ट होती हैं । एक तो यह कि वह निर्गुणोपासक थे और दूसरी यह कि वे मुसलमान कुलोद्भव थे ।

(4) गुरु ग्रन्थ साहब - -

इस ग्रन्थ में संत कबीर दास जी के बहुत से सलोकु और राग संग्रहीत हैं । संत कबीर दास जी के अतिरिक्त कुछ अन्य संतों की बानियां भी पाई जाती हैं ।[35] संत कबीरदास जी के सलोकों और रागों से जो

---

33. रैदास जी की बानी - बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स - पृष्ठ - 33
34. -- वही -- -- वही -- - पृष्ठ - 33
35. डा० रामकुमार वर्मा - संत कबीर , पृष्ठ - 39

बातें स्पष्ट होती हैं उनका उल्लेख तो मैं संत कबीर की जन्मतिथि आदि के अन्तर्गत करूंगी ।

(5) कबीर साहब की परिचई[36] - -

इस ग्रन्थ के लेखक अनन्तदास जी हैं । अनन्तदास जी संत रैदास जी के परवर्ती थे । यह ग्रन्थ 1600 के आस-पास लिखा गया था । इस ग्रन्थ में संत कबीर के जीवन से सम्बन्धित कुछ बातें पाई जाती हैं ।

1. वे जुलाहे थे और काशी में वास करते थे ।
2. वे गुरु रामानन्द के शिष्य थे ।
3. बघेल राजा वीर सिंह संत कबीर के समकालीन थे ।
4. सिकन्दरशाह का काशी में आगमन हुआ था और उन्होंने संत कबीर पर अत्याचार भी किए थे ।
5. संत कबीर ने 120 वर्ष की आयु पाई थी ।

संत कबीर का जीवन-वृत्त लिखते समय मुझे इन सभी बातों से काफी सहायता मिली है ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने संत कबीर की जन्मतिथि जेठ सुदी पूर्णिमा, सोमवार सं० 1456 मानी है । किन्तु यह तिथि डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल को मान्य नहीं है । वे संत कबीर की जन्मतिथि सं० 1407 और 1477 के बीच अनुमानित करते हैं । वे कहते हैं कि नामदेव की कहानियां संत कबीर

---

36. अनन्तदास की परिचई - अनन्तदास

के समय में बहुत प्रचलित हो गई थीं और नामदेव की मृत्यु सं० 1407 में होने से संत कबीर की जन्मतिथि सं० 1407 के पश्चात ही ठहरती है। उनका कहना है कि संत कबीर का जन्म 1370 तथा 1455 के आसपास हुआ होगा। अधिकांश विद्वान इसके बीच का समय 1433 ही मानते हैं। संत कबीर की रचनाओं में केवल एक ही पंक्ति ऐसी है जिसके आधार पर उनके समय का अनुमान लगाया जा सकता है ---

"गुरु परसादी जैदेव नामा।
भगति कै प्रेम इन्हहि है जाना।।"

इससे स्पष्ट है कि संत कबीर दास जी जैदेव और नामदेव के पश्चात् हुए थे। जैदेव का समय बारहवीं शताब्दी तथा नाम देव का समय तेरहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है।

'कबीर चरित बोध[37] नाम का एक ग्रन्थ है, जिसमें संत कबीर की जन्मतिथि दी गई है। इसके अनुसार संत कबीर की जन्मतिथि दी है, जिसके अनुसार उनका जन्म 1368 में हुआ था।

यदि हम संत कबीर की जन्मतिथि सम्वत् 1455 ही मानें तो भी वे सरलता से स्वा०रामानन्द के शिष्य माने जा सकते हैं। दोनों की अवस्थाओं में 7 वर्ष का अन्तर दिखाई पड़ता है। गुरु-शिष्य की आयु में इतना अन्तर होना परम् अपेक्षित भी है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि संत कबीर का जन्मकाल सम्वत् 1455 मानना अधिक उपयुक्त है।

---

37. कबीर चरित बोध, पृष्ठ - 6

गुरु रविदास के जीवन को पूर्णत: प्रकाश में लाने के लिए यद्यपि हमें न तो पूर्ण-रूपेण अंत:साक्ष्य ही उपलब्ध होते हैं और न कोई ऐसे वाहि:साक्ष्य प्रमाण ही अधिकारिक रूप से उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर गुरु रविदास जी के जीवन-वृत को पूर्ण रूपेण प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया जा सके। किन्तु फिर भी जो भी अन्त:साक्ष्य और वाहि:साक्ष्य प्रमाण अब तक उपलब्ध हो सके हैं, उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर हम गुरु रविदास के जीवन से सम्बन्धित कुछ तथ्यों की जानकारी अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

जहां तक अन्त:साक्ष्यों, प्रमाणों का प्रश्न है, गुरु रविदास जी ने अन्य संत एवं भक्त-कवियों की ही भांति अपने विषय में कुछ विशेष परिचय नहीं दिया। बस उनके द्वारा रचे गए कतिपय पदों के द्वारा हमें उनकी जाति, कुल, परिवार, निवासस्थान, एवं जीवनयापन की विधि पर प्रकाश पड़ता है। गुरु रविदास जी द्वारा लिखे गए कुछ पदों में कुछ महान सन्तों का प्रसंग आया है,[38] जिससे गुरु रविदास जी के जीवनकाल के विषय में कुछ तथ्य प्रकाशित हो सकते हैं। जिन महान सन्तों का उल्लेख गुरु रविदास जी ने इतने सम्मानपूर्वक किया है या तो वे रविदास जी के जीवनकाल में ही उनसे अधिक सम्मानित और प्रसिद्ध हो चुके थे या स्वर्गवासी हो चुके थे, अर्थात गुरु रविदास जी से पहले जन्म ले चुके थे। कुछ सन्तों ने भी गुरु रविदास जी का नाम बड़े सम्मानपूर्वक लिया है।

---

38. नामदेव, कबीर तिलोचन सधना सैन तरै।
निरगुन को गुन देखा आई देही सहित कबीर सिधाई -

-- गुरु ग्रन्थसाहब - पद -15

अभी तक ऐसा कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं मिल सका है, जिसके आधार पर गुरु रविदास जी के जन्म संवत् का ठीक-ठीक निर्धारण किया जा सके। फिर भी जिज्ञासु विद्वानों ने अनुमान के सहारे इस सम्बन्ध में विचार किया है। 'संत रविदास जी और काव्य'[39] के लेखक- युगल का कथन है कि अयोध्यास्थित गुरु रविदास गद्दी के महन्त रामदास जी के अनुसार गुरु रविदास जी का जन्म सं० 1471 में हुआ था। उन्होंने यह भी अनुमान लगाया है कि रविवार के दिन उत्पन्न होने के कारण इनका नाम रविदास रखा गया। उनकी यह भी धारणा है चूंकि सभी रविदासी गद्दियां सदियों से माघ-पूर्णिमा को इनकी जन्मतिथि मनाती चली आ रही है। इसलिए हमें इस तिथि को मान्यता देनी चाहिए। परन्तु इन युगल- लेखकों ने स्पष्ट रूप से कोई तिथि नहीं बताई है। इसलिए इसे अन्तिम तथा मान्य नहीं माना जा सकता। डा० रामकुमार वर्मा गुरु रविदास जी को संत कबीर का समकालीन मानते हैं। रविदासी परम्परा के अनुयायियों स्वंगुरु रविदास जी के शिष्यों ने निम्नलिखित साखी को आधार मान कर उनकी जन्मतिथि संवत् 1455, माघ पूर्णिमा, दिन रविवार अनुमानित की है --

'चौदह सौ तैंतीस की, माघ सुदी पंद्रास।
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे श्री रविदास।।'[40]

गुरु रविदास जी की जन्मतिथि के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। डा० गोविन्द त्रिगुणायत[41] ने गुरु रविदास

---

39. स्वामी रामानन्द शास्त्री, वीरेन्द्र पाण्डेय - संत रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ - 83

40. डा० बी० पी० शर्मा, संत रविदास की भक्ति साधना, पृष्ठ - 10

41. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ-भूमि, पृष्ठ - 33

की महात्मा कबीर से भी वयोवृद्ध माना है।[42] यही विचार आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद का भी है। वे कहते हैं कि संत करमदास द्वारा दी गई गुरु रविदास जी की जन्मतिथि को मान्यता प्रदान करनी चाहिए। किन्तु अभी तक किसी निश्चित तिथि या संवत् का पता नहीं चलता, तब तक गुरु रविदास अनुयायियों और शिष्यों में मान्य 1433 को ही मान्यता उपयुक्त समझा जाना चाहिए।

जन्म स्थान -

संत कबीर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित हैं - एक तो यह है कि वे मगहर में उत्पन्न हुए थे, दूसरा यह कि उनका जन्म स्थान काशी था और तीसरा यह कि वे आजमगढ़ जिले के बेलहरा गांव में उत्पन्न हुए थे।

अन्तःसाक्ष्य[43] के रूप में संत कबीर की अनेक बानियां प्रस्तुत की जा सकती हैं, किन्तु कई पंक्तियों में एक दूसरी का विरोध सा दिखाई भर देता है। उदाहरणार्थ, काशी में हम प्रगट भए हैं, रामानन्द चेताए को ही लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि संत कबीर ने काशी में जन्म लिया था किन्तु 'पहले दरस मगहर पायो, पुनि कासी बसे आई' से इस आशय का खंडन हो जाता है।

'दरस'[44] शब्द का अर्थ कुछ विद्वान जन्म लेना मानते हैं और कुछ विद्वान इस शब्द का अर्थ ईश्वर-दर्शन से लगाते हैं। मेरे विचारानुसार

---

42. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, पृ0 3, अपनी बात के अन्तर्गत।

43. सरनाम सिंह शर्मा, कबीर : एक विवेचन, पृष्ठ - 29-30

44. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ - 210

कभी संत कबीर पर्यटन करते हुए मगहर गए होंगे और उन्हें वहां किसी सिद्ध योगी के दर्शन हुए होंगे और उनसे ज्ञान प्राप्त हुआ होगा ।

संत कबीर साहब[45] का स्थान परंपरानुसार काशी नगरी ही कहलाती रही है और इसके प्रमाण में संत कबीर साहब की रचनाओं से भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं तो भी स्पष्ट रूप से काशी को उनका जन्म स्थान नहीं कहा जा सकता । उन्हें काशी से इतना प्रेम था कि उसके त्यागने को वे जल से मीन के बिछुड़ने की कल्पना-सी तुलना करते हैं । काशी के जोगी, जती, तपी, सन्यासी अथवा बनारसी ठगों का ऐसा सजीव चित्रण करते हैं कि उन्हें उस नगरी से पूर्ण परिचित ही समझना चाहिए । वे[46] तो यहां तक कहते हैं कि ' सकल जनम सिवपुरी गंवाइया ' तथा बहुत बरस तप कीया कासी और मरनु भयो मगहर को वासी । ' तब भी काशी के जन्म स्थान होने का उनसे हमें सीधा प्रमाण नहीं मिलता ।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत[47] कबीर का जन्म मगहर में मानते हुए निम्नलिखित तर्क देते हैं ---

1. मगहर में मुसलमानों की बस्ती बहुत अधिक है । वे सभी अधिकतर जुलाहे हैं । कोई आश्चर्य नहीं कि कबीर इन्हीं जुलाहों में से किसी के घर उत्पन्न हुए होंगे ।

---

45. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर , पृष्ठ - 210

46. परशुराम चतुर्वेदी - कबीर साहित्य की परख , पृष्ठ -260

47. डा० गोविन्द त्रिगुणायत - हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि , पृष्ठ - 33

2. संत कबीर ने अपनी रचनाओं में कई बार मगहर की चर्चा की है। इसका तात्पर्य यह है कि मगहर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने उसे सदैव काशी के समकक्ष ही पवित्र और उत्तम माना है। इतनी अधिक श्रद्धा-भावना केवल जन्म-स्थान के प्रति ही हो सकती है।

3. संत कबीरदास जी मृत्यु का समय समीप आने पर मगहर चले गए थे। उन्होंने काशी में रहना उचित नहीं समझा। यह मानव-स्वभाव है कि वह जहां उत्पन्न होता है, वहीं मरना चाहता है।

4. परन्तु मेरे विचारानुसार संत कबीर जी इस तर्क को मिथ्या सिद्ध करना चाहते थे कि काशी में मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उनके इस कथन से इस बात की पुष्टि भी होती है - 'जो कबीरा काशी मरै, रामै, कौन निहोरा रे।'

इन तर्कों [48] से डा० त्रिगुणायत यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि संत कबीर जी का जन्म काशी या मगहर में न मानकर आजमगढ़ जिले में बेलहरा गांव में हुआ मानते हैं।

जहां तक काशी से दूरस्थ मगहर के पक्ष में कोई प्रौढ़ प्रमाण न मिले, वह संत कबीर जी का जन्म स्थान नहीं माना जा सकता। संत कबीर बानी के अन्तर्गत कुछ पंक्तियां हैं, जो काशी और मगहर की स्थूल भिन्नता सिद्ध करने के-लिए पर्याप्त हैं -

1. 'पहले दरसन मगहर पायो, पुनि कासी बसे आई।'[49]
2. 'जैसा मगहर वैसी कासी, हम एकै करि जानी।'

---

48. सरनाम सिंह शर्मा, कबीर, एक विवेचन, पृष्ठ - 22-2
49. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृष्ठ - 206

3. 'जस कासी, तस मगहर, ऊसर हिरदै राम सति होई ।'

४. 'बहुत बरस तप कीवा कासी, मरनु भइया मगहर को वासी ।'

5. 'सकल जनम सिवपुरी गंवाइया, मरती बार मगहर उठि धाइवा ।'

6. 'का कासी का मगहर, ऊसर हृदय राम बस मोरा ।'

7. ' तू बाम्हन मै कासी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना ।'

8. 'कासी मैं हम प्रगट भए हैं, रामानन्द चेताए ।'

संत कबीर की वाणी के अतिरिक्त काशी के पक्ष में जनश्रुति और कबीर पन्थ के ग्रन्थ भी हैं । कोई कबीर पंथी संत कबीर को मगहर का भी नहीं मानते हैं । ' कबीर की बानी ' से कुछ तथ्य प्रकाश में आते हैं, वे हैं --

संत कबीर ने पर्यटन बहुत किया था । वे देश के अनेक लोगों को जो विभिन्न भागों से आये थे, के सम्पर्क में आते रहते थे । उन्होंने कई भाषाओं के शब्द अपनी भाषा में समाहित किए थे । जो सामान्य भाषा के शब्द थे उन्हें भी अपनी भाषा में मिश्रित किया । जो हो यह सम्भव है कि अपने पर्यटन काल में संत कबीर कहीं और चले गए हों । यदि पहली पंक्ति ' पहले दरसन मगहर पायो, पुनि कासी बसे आई ' को प्रामाणिक माना जाये तो यह मानना अनर्थ न होगा कि अपने ज्ञानोदय से पूर्व भी संत कबीर कुछ समय मगहर में रहे थे ।

इस संपूर्ण विवेचन[50] से यह बात स्पष्ट होती है कि इन शब्दों द्वारा मगहर में जन्म ग्रहण करने की बात सिद्धनहीं होती दिखाई देती। इसीलिए किसी लेखक ने काशी एवं मगहर दोनों को छोड़कर आजमगढ़ के बेलहरा गांव को उनका जन्म स्थान माना है। जन्म स्थान के लिए काशी से बढ़कर अभी कोई दूसरा स्थान सिद्धनहीं हो सका और मगहर तथा बेलहरा ठहराने के लिए कुछ अधिक ही प्रमाण चाहिए।

निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि संत कबीर जी ने काशी या उसके समीपस्थ किसी स्थान पर जन्म लिया होगा और अन्तकाल समीप आने पर मगहर चले गए होंगे।

सामान्यतः[51] गुरु रविदास पंथ के अनुयायी गुरु रविदास के जन्म-स्थान के विषय में एकमत नहीं हैं। उनकी रचनाओं में भी उनके जन्म-स्थान के विषय में कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता। इस विषय में विभिन्नमत मिलते हैं। सम्पूर्ण मतों को यदि शीर्षक बद्ध किया जाये तो इन मतों को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं। -

1. रैदास पश्चिमी प्रदेश के निवासी थे। पश्चिमी प्रदेश में भी अनेक सम्भावनायें हैं --
   (क) पश्चिमी उत्तर प्रदेश के,
   (ख) गुजरात- राजस्थान के,
   (ग) राजस्थान में मेवाड़ के,
   (घ) राजस्थान में माण्डवगढ़ या मंडावर के निवासी।

2. सन्त रैदास पूर्वी प्रदेश, बनारस के आस-पास के रहने वाले थे।

---

50. परशुराम चतुर्वेदी -- कबीर साहित्य की परख, पृष्ठ - 260

51. डा० योगेन्द्र सिंह, सन्त रैदास, पृष्ठ - 16

इस मत में भी दो सम्भावनायें सामने आती हैं --

(क) रविदास बनारस के निवासी थे ।

(ख) रविदास बनारस के पास ही महुवाडीह के निवासी थे ।

गुरु रविदास जी के पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निवासी होने की कल्पना, रविदास महासभा के कुछ अनुयायियों द्वारा की गई है । उनका कथन है कि गुरु रविदास जी पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निवासी थे । परन्तु काशी का सांस्कृतिक महत्व सुनकर बाद में वे वहां आकर रहने लगे थे । वे अनुयायी अपने मत के समर्थन में किसी भूतपूर्व रविदासी महासभा के अधिवेशन के अध्यक्ष पद से दिए गए लाला लाजपतराय के भाषण का उल्लेख करते हैं, किन्तु इस विचार का कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता ।

गुरु रविदास जी[52] के गुजरात व राजस्थान की ओर होने के विचार को कुछ प्रामाणिकता अवश्य मिलती है । इस सम्बन्ध में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं :-

(क) गुजरात राजस्थान की ओर गुरु रविदास जी के अनुयायियों की संख्या अधिक पायी जाती है ।

(ख) भाषा की दृष्टि से गुरु रविदास जी की रचनाओं में उधर की भाषा के पर्याप्त शब्द व प्रयोग पाये जाते हैं ।

(ग) राजस्थान में चित्तौड़ में श्री कुम्भनश्याम जी का मंदिर तथा गुरु रविदास जी की छतरी बनी हुई है । बताया जाता है कि यह स्थान गुरु रविदास जी का ही है , जहां छतरी बनी है वहां गुरु रविदास जी का स्वर्गवास हुआ था ।

---

52. डा० चन्द्रदेव राय - कबीर और रैदास का तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-206

(घ) राजस्थान में ही माण्डोगढ़ में गुरु रविदास का यह कुण्ड और उनकी कुटी पाई जाती है, जिससे यह भी विचार उत्पन्न हो सकता है कि गुरु रविदास जी राजस्थान में ही इस प्रदेश के निवासी होंगे ।

जहां तक गुजरात - राजस्थान की और रविदासी अनुयायियों की संख्या अधिक होने के कारण गुरु रविदास को उस क्षेत्र का मानने का प्रश्न है, इस तर्क को अन्तिम और प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । मात्र अनुयायियों की संख्या का बाहुल्य किसी प्रवर्तक के ही प्रदेश का प्रमाण नहीं होता । अनुयायियों की संख्या में राजस्थान के अधिक अनुयायी होने का यह परिणाम अवश्य निकाला जा सकता है कि गुरु रविदास का प्रभाव उस क्षेत्र में किसी कारण से अधिक रहा होगा या वे अपने जीवन-काल में पर्याप्त समय वहां रहे होंगे । मौखिक परम्परा से एक बड़े काल तक 'बानी' रूप में चले आने वाले गुरु रविदास के काव्य में राजस्थान और गुजरात की और की शब्दावली भी अधिक आ गई होगी । सन्तों का भ्रमण तथा पर्यटन अत्यन्त विस्तृत था । उनकी भाषा किसी एक विशेष क्षेत्र से बंधकर नहीं चली है उसमें स्थानीय परिवर्तन तथा स्वरूप सदा आते रहते हैं ।

चित्तौड़[53] में कुम्भनश्याम का मन्दिर तथा गुरु रविदास की छतरी और माण्डवगढ़ में रविदास-कुटी तथा कुण्ड आदि का अस्तित्व इस बात के प्रमाण नहीं हो सकते कि गुरु रविदास उस क्षेत्र के निवासी थे ।

---

53. रैदास रामायण - 'काशी ढिंग मांडुर स्थाना, शुद्र वरण करत गुजराना ।,
मांडुर नगर लीन अवतारा, रविदास शुभ नाम हमारा ।'
पद - 60

यह स्थल तो गुरु रविदास जी के पर्यटन के बीच कभी उधर पहुंचने की स्मृति में श्रद्धालु भक्तों द्वारा बनवाये जा सकते हैं। श्री कुम्भनश्याम के मन्दिर तथा गुरु रविदास जी की छतरी के विषय में तो प्रसिद्ध है कि रानी झाली ने गुरु रविदास जी के आगमन पर उसी उपलक्ष्य में यह स्थल बनवाये थे।

गुरु रविदास जी का जन्म राजस्थान के माण्डोगढ़ में हुआ था इस पक्ष में रैदास-रामायण की एक पंक्ति दी जाती है। किन्तु यह विचार तो उस पंक्ति के साथ ही जुड़ी उससे पहली पंक्ति से कट जाती है, जिसमें उस स्थान को स्पष्टतः काशी के पास बताया गया है।

अब गुरु रविदास जी के जन्म-स्थान सम्बन्धित सम्भावनाओं में काशी अथवा काशी के आस-पास के ही किसी स्थल की सम्भावना शेष रह जाती है। इस पक्ष में गुरु रविदास के ही पदों में अन्तःसाक्ष्य प्रमाण स्पष्ट रूप से उपलब्ध हैं [54], जिसमें कि गुरु रविदास ने अपने परिवार - वालों को बनारस के आस-पास ढोर ढोने का पेशा करनेवाला बताया है। इस तर्क के विरुद्ध भी यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इस स्थल पर अपनी जाति और कुटुम्बवालों का परिचय दिया है कि वे बनारस के आस-पास ढोर ढोने का पेशा करते पाये जाते हैं। इस पंक्ति से यह भी सिद्ध नहीं होता कि गुरु रविदास जी भी वहीं के निवासी थे।

गुरु रविदास[55] जी के अनुयायियों का एक ऐसा वर्ग है जो कि इन्हें पूर्वी प्रदेश अर्थात् वाराणसी के आस-पास का निवासी मानता है।

---

54. रैदास-रामायण - मेरी जाति कुटवांढला ढोर ढवंता नितहि बनारसी आसपासा
पद - 60

55. डा० बी० पी० शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी -

गुरु रविदास जी के जन्म स्थान सम्बन्धी स्थानों में माण्डवगढ़ तथा वाराणसी को ही अधिक महत्व दिया गया है। गुरु रविदास वाणी में कुछ पंक्तियां ऐसी मिलती हैं, जिसमें गुरु रविदास जी ने अपने परिवार वालों के व्यापार करने वाले नगर का संकेत किया है -

1. 'मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढवंता।
   नितहि बनारसी आस-पासा ।।'

2. जाके कुटंब के सब ढोर ढोवंत ।
   फिरहुं बनारसी आस-पासा ।।

'आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति।
तिन तसै रविदास दासान दासा ।।'

इस अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु रविदास जी बनारस या उसके आस पास के ही निवासी थे।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी[56] का यह अनुमान है कि गुरु रविदास जी संभवतः काशी में ही रहा करते थे और उसी के निकट मंडुआडीह के पूरब और वर्तमान लहरतारा तालाब के निकट रघु या राहु चमार के घर इनका जन्म हुआ था।

गुरु रविदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में यदि कोई साक्ष्य विश्वसनीय माना जाये तो वह है 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में प्राप्त एक अन्तः साक्ष्य जिसमें वह स्वयं कहते हैं कि इनकी जाति के लोग नित्य बनारस के

---

56. पं० परशुराम चतुर्वेदी - उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० - 238

आस-पास ढोर ढोने का काम करते थे। एक पद[57] में उन्होंने काशी का भी नामोल्लेख किया है। इन पंक्तियों से मेरा अनुमान यह है कि बनारस को निश्चित रूप से इनकी जन्मभूमि तो नहीं कह सकते परन्तु यह तो निश्चित है कि वे बनारस के आस-पास किसी गांव में रहते होंगे। इनमें से 'सीर गोवर्धनपुर' स्थान का नाम भी लिया जा सकता है। 'आल इण्डिया आदि धर्म मिशन' (दिल्ली) के नवीनतम प्रयास एवं शोध के अनुसार वाराणसी स्टेशन से लगभग 5 मील दूर दक्षिण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निकट यह सीर गोवर्धन नामक स्थान स्थित है, जिसे इनका जन्म-स्थान समझा जा रहा है।

'रैदास- रामायण' में गुरु रविदास जी का जन्म काशी के निकट मांडुर नामक नगर बताया गया है। यह मांडुर, मंडुवाडीह हो सकता है, जो कि बनारस कैण्ट से लगभग डेढ़ मील पश्चिम में स्थित है। हमें गुरु रविदास जी का जन्म स्थान मंडुवाडीह ही मानना चाहिए। अधिक साक्ष्य तो इसी के जन्म स्थान होने के सम्बन्ध में मिलते हैं।

मंडुवाडीह के पक्ष में एक तर्क और उपस्थित होता है। शंकराचार्य तथा गुरु रविदास जी के शास्त्रार्थ के प्रसंग में शास्त्रार्थ का स्थान काशी के नगर द्वार के बाहर बताया जाता है। क्योंकि इस 'नगर द्वार के बाहर' शब्द से मंडुवाडीह स्थान की पुष्टि होती है। क्योंकि यह गांव काशी के लगभग पश्चिमी सीमा पर बाहर ही कहा जा सकता है। इस प्रकार गुरु रविदास के निवास स्थान अथवा पारिवारिक संबन्ध होने के संबंध में सर्वाधिक सबल प्रमाण मंडुवाडीह के ही पक्ष में मिलते हैं। यह हो सकता

---

57. गुरु ग्रन्थ साहबत रागु-मलार, पद - 1

है कि प्रसिद्धि के उपरांत उन्होंने अपना कोई स्थान काशी मुख्य नगर में ही बनवाया हो। यह स्थान गोपाल मन्दिर भी माना जा सकता है। इसलिए सबसे अधिक प्रमाण 'मंहुवाडीह' के पक्ष में ही पाये जाते हैं। इसलिए इनका जन्म स्थान मंहुवाडीह को ही मानना चाहिए।

जाति - -

संत कबीर की जाति भी एक विवाद का विषय ही है। इस विषय में भी विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कोई उन्हें जाति का जुलाहा बताता है तो कोई ब्राह्मण और कोई कोरी। 'गुरु ग्रन्थ साहब [58] की एक पंक्ति के अनुसार संत कबीर के पिता कोई बडउ-गुसाईं माने जाते हैं। इसी आधार पर डा० रामकुमार वर्मा [59] कहते हैं कि संत कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति के होंगे जो मुसलमान होते हुए भी योगियों से संस्कार सम्पन्न थे तथा दशनामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाईं कहलाते थे। परन्तु इस पंक्ति से संत कबीर का अर्थ बडउ गुसाईं शब्द से परमतत्व है और तब प्रामाणिक सामग्री के अभाव में उनका सम्बन्ध जाति गोसाईं से स्थिर नहीं किया जा सकता।

सभी विद्वानों ने अपने-अपने पक्ष में कबीर-बानियों से सहायता ली है। संत कबीर ने भी अपनी बानियों में स्वयं को जुलाहा कहा है

---

58. गुरु ग्रन्थ साहब, रागु बासा, पद - 3

59. कबीर ग्रन्थावली, पद- 346
डा० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, पृष्ठ 2

तथा कोरी भी कहा है । कोरी और जुलाहा दोनों एक व्यवसाय से संबंधित होते हैं, परन्तु जुलाहे मुसलमान होते हैं और ' कोरी ' हिन्दू ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी[60] के मतानुसार भी संत कबीर उस जुलाहा वंश में पालित हुए थे, जो नव धर्मांतरित ही था । परन्तु मुसलमानी रूप के पहले वह कोरी न हो कर वय जीवी नाथपंथी गृहस्थ जोगियों की जाति थी । परन्तु कुछ स्थानों पर कोरी शब्द के आने से इन्हें कोरी जाति का सिद्ध नहीं किया जा सकता । क्योंकि इन स्थानों पर कोरी शब्द का आध्यात्मपरक आशय भी समझा जा सकता है । इस प्रकार जोगी संस्कारों से प्रभावित देखकर इन्हें जोगी या जुगी जाति का सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

संत कबीर ने अपनी रचनाओं में भी स्वयं को जुलाहा कहा है । इनके समसामयिक समझे जाने वाले गुरु रविदास[61] तथा धन्ना भक्त ने भी इन्हें जुलाहा कहा है । :-

'जाके ईदि बकरीदि कुल गऊ रै बध करहि
मनि अहिं सैख सहीद पीरा ।।
जाके बाप वैसी करि पूत ऐसी करी तिहुं रै लोक ,
परिसिध कबीरा ।।'
(रैदास बानी से)

'कासी बसे जुलाहा एक , हरि भगतनि की पकरि टेक ।
(अनन्तदास की परिचई से)

---

60. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ - 5

61. डा० बी० पी० शर्मा, सम्पादक (भक्त रत्नावली) , पृष्ठ - 32-33

एकाध स्थानों पर संत कबीर की बानियों में ऐसी पंक्तियां प्रयुक्त हुई हैं, जो यह प्रकट करती हैं कि संत कबीर न तो हिन्दू थे न मुसलमान और न ही जोगी --

'जोगी गोरख-गोरख करै, हिन्दू राम-नाम उच्चारै
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीरा को स्वामी घट-घट रह्यो समाई ।।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी[62] ने 'कबीर' में जुलाहा जाति की विवेचना करते हुए लिखा है -- ' कबीरदास की बानियों से जान पड़ता है कि मुसलमान होने के बाद न तो जुलाहा जाति अपने पूर्व-संस्कारों से मुक्त हो सकी थी और न ही उसकी सामाजिक मर्यादा बहुत ऊंची हो चुकी थी । संत कबीरदास ने जुलाहों की जाति को कमीनी जाति कहा है और बताया है कि उस समय भी यह जाति जन साधारण में उपहास का पात्र थी ।

संत कबीर की जाति के सम्बन्ध में मेरे विचारानुसार डा० त्रिगुणायत के मत को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार रख सकते हैं ---

1. कबीर किसी भी जुगी जाति से सम्बन्धित नहीं थे ।

2. कबीर का कोरियों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। चूंकबीरदास जी की प्रवृत्ति थी कि वे जिस जाति के लोगों से बात करते थे तो प्राय: उसी व्यक्ति की भाषा में आत्माभिव्यक्ति करते थे । संत कबीर ने कोरी शब्द का प्रयोग इस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर किया है । जुलाहे का हिन्दी रूपान्तर कोरी ही हो सकता है । कोरी शब्द जाति का सूचक न होकर केवल व्यवसाय का सूचक है । इसलिए हम संत कबीर को किसी कोरी जाति का मुसलमानी संस्करण नहीं मान सकते ।

---

62. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृष्ठ - 5

संत कबीर[63] जुलाहा जाति के रत्न थे। उनकी हिन्दू विचार धारा को स्पष्ट करने के लिए श्री रामानन्द का शिष्यत्व पर्याप्त है। गुरु रामानन्द का शिष्य होने पर ही संत कबीर हिन्दू धर्म की ओर इतने अधिक उन्मुख हुए थे।

तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों का अवलोकन दलित जातियों के प्रति संत कबीर की विशेष सहानुभूति और उनकी जाति की उपहास्यता हमें यह मानने के लिए प्रवृत्त करती है कि संत कबीर के परिवार की कोरी जैसी किसी जाति से सम्बन्धित अनेक उपहासप्पी कहानियां प्रचलित हैं। ऐसी ही हंसी की कहानियां जुलाहों के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध हैं।

ऐसा भी देखा गया है कि प्राय: धर्म-परिवर्तन के अनन्तर भी अपना पूर्व व्यवसाय ही अपनाए रहते हैं। अतएव संत कबीर कालीन जुलाहों में बहुत धर्मान्तरित कोरी रहे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर यह न मानने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि संत कबीर के पूर्वज कोरी थे, जबकि संत कबीर ने अपने मुख से कोरी और जुलाहा दोनों जातियों से अपना संबंध जोड़ते हुए हमें भी दोनों को सम्बद्ध रूप से देखने के लिए प्रेरित किया।

संत कबीर की जाति से सम्बन्धित एक मतवाद और उठ खड़ा हुआ है। इसका आधार संत कबीर द्वारा प्रयुक्त 'गोसाईं' शब्द है। संत कबीर ने एक स्थल पर लिखा है ---

---

63. डा० गोविन्द त्रिगुणायत - कबीर की विचार धारा, पृ० -41-42

'पिता हमारो बहु गुसाईं तिसु पिता हउ किउ करिजाईं ।[६५]

डा० रामकुमार वर्मा का मत है कि संत कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति के होंगे जो मुसलमान होते हुए भी जोगियों के संस्कार से सम्पन्न थे । दशनामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाईं कहलाते थे । इन गोसाइयों का नाथ पंथ पर पर्याप्त प्रभाव था ।

संत कबीर पर नाथ-पंथ के प्रभाव का वे यही कारण मानते हैं । अहमद शाह ने लिखा है कि संत कबीर को यदि विधवा ब्राह्मणी का पुत्र माना जाये तो गोसाईं जाति से सम्बन्ध स्थिर नहीं कर सकते । फिर यह निश्चित करना कि संत कबीर किस जाति के रत्न थे, बड़ा कठिन है । फिर भी मेरी यह धारणा है कि संत कबीर जुलाहा जाति के रत्न थे । संत कबीर की हिन्दू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए स्वामी रामानन्द का शिष्यत्व पर्याप्त है । मेरा ऐसा विश्वास है कि स्वामी रामानन्द का शिष्य होने पर ही संत कबीर हिन्दू धर्म की ओर इतना अधिक उन्मुख हुए थे ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संत कबीर जुलाहा जाति में उत्पन्न हुए थे । इनके कुल का सम्बन्ध कोरी जाति से था, जिस पर नाथ पंथ का प्रभाव अवश्य रहा था । इसलिए उनके वंश पर पूर्व जातीय धार्मिक संस्कार बने हुए थे, जिसकी अभिव्यक्ति संत कबीर के व्यक्तित्व से प्रमाणित है तथा जिनके पोषण में स्वा०रामानन्द का प्रभाव भी सहायक था ।

---

६५. संत कबीर , पृष्ठ - 61

गुरु रविदास जी के जीवन में यदि कोई तथ्य प्रामाणिक है तो वह है उनकी जाति। उन्होंने अपनी जाति का उल्लेख बार-बार प्रसंगानुसार किया है, जिसके आधार पर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि उनका जन्म चमार जाति में हुआ था। उन्होंने अपने अनेक पदों में स्वयं कहा है --

1. ऐसी मोरी जाति बिख्यात चमारा।[65]
2. चरन-सरन रैदास चमइया।[66]
3. नीच ते ऊंच प्रभु कियो है, कह रैदास चमारा।[67]
4. मेरी जाति कुटुबांढला ढोर ढोवंता, नितहि बनारसी आस-पासा।[68]
   अब बिप्र प्रधान तिहिं करहिं डंडउति तेरे नाम सरनाई रविदासा सुदासा।।
5. चमरटा गांठि न जनई।[69]
6. करम कठिन मोरी जाति कुजाति।[70]

प्रौढ़ दम्पति[71] बनारस के प्रसिद्ध चमड़े के व्यापारी थे। पिता राघवदास और उनकी पत्नी करमा देवी थीं। उतार उमर में घर में पुत्र

---

65. रैदास जी की वाणी - वैलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, प्रमाण, पद -29, पृ0-21
66. -- वही -- पद - 81, पृष्ठ - 40
67. -- वही -- पद - 87, पृष्ठ - 42
68. गुरु ग्रन्थ साहब, रागु मलार, पद - 7, पृष्ठ -236
69. रैदास जी की वाणी, पद - 22, पृष्ठ - 26
70. -- वही -- पद - 24, पृष्ठ - 26
71. डा0 बी0 पी0 शर्मा - संत रविदास की भक्ति साधना - पृष्ठ - 7-8.

जन्म हुआ तो खुशियों का ठिकाना न रहा । पुत्र जन्मोत्सव सबसे बड़ा उत्सव होता है । परन्तु इस उत्सव में एक विघ्न आ खड़ा हुआ । नवजात शिशु ने माता का स्तनपान नहीं किया । माता करमा देवी के बार-बार यत्न करने पर भी बालक ने स्तन को छुआ तक नहीं । मानव मनोविज्ञान के अनुसार नवजात शिशु ब्रह्मस्वरूप होता है । परम आत्मा से बिछुड़ कर वह प्रभु के इस माया-लीलामय संसार में आता है, परम-आत्मा से बिछुड़ कर वह रोता भी है और हंसता भी है । पूर्वजन्म की स्मृतियां, घटनायें उसके मानसपटल पर कौंधती रहीं । इस प्रकार की घटनाओं से यह अनुमान लगाया गया कि गुरु रविदास जी पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे । इसलिए उन्होंने चमारिन माता का दूध नहीं पिया । इस प्रकार की निराधार कथाओं के आधार पर गुरु रविदास जी को पूर्व-जन्म का ब्राह्मण सिद्ध करना व्यर्थ है । यदि गुरु जी पूर्व जन्म में ब्राह्मण रहे भी हों तो क्या हुआ ? इस जन्म में तो उन्होंने चमार कुल में ही जन्म लिया था । गुरु रविदास जी की बानियों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे जिस जाति से सम्बन्ध रखते थे, वह चमार ही थी । उन्होंने स्वयं कहा है --

1. 'मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा ।
तुम सरनागति राजा रामचन्द्र सरनागति अवतारा ।।'[72]

2. 'नागर जना मोरी जाति बिखिआत चमारा ।[73]
रिदै राम गोविन्द गुन सारे ।।'

---

72. गुरु ग्रन्थ साहब, रागु सोरठि , पृष्ठ -659'

73. -- वही -- रागु मलार , पृष्ठ-1293

इन अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि गुरु रविदास जी शूद्र जाति में उत्पन्न हुए थे। उनकी जाति चमार थी और उन्होंने अपनी जाति का उल्लेख अपनी बानियों में किया भी है।

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने को चर्मकार जाति का घोषित किया है। अपनी जाति छिपा कर वर्ण व्यवस्थानुसार मानी जाने वाली उच्च जातियों का लेबल लगाने की जो भावना आज के युग में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है गुरु रविदास जी उसके विरोधी थे। वर्तमान युग की यह भावना अन्तर में बसी युग-युग की हीन भावना की प्रतिक्रिया मात्र है। अपनी सही जाति को छिपाने की भावना के पीछे स्वयं अपनी ही दृष्टि में अपनी जाति को नीची समझना सिद्ध होता है। व्यक्तित्व विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचने वाले गुरु रविदास जी भला इसे कब पसन्द कर सकते थे। एक नहीं अनेक स्थलों पर उन्होंने गर्व के साथ यह स्वीकार किया है कि वे चर्मकार थे, नीच थे, ओछे थे और इतना होने पर भी उन्होंने भगवद् भक्ति के द्वारा परमपद को प्राप्त कर लिया था। वे समस्त भारत के प्रत्येक वर्ण एवं जाति के लिए वन्दनीय हो गए।

कुछ ग्रन्थों में गुरु रविदास को पूर्वजन्म का ब्राह्मण माना गया है। 'रैदास - परचई' के लेखक श्री अनन्तदास ने लिखा है कि गुरु रविदास जी पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे और मांस खा लेने के कारण इनका जन्म चर्मकार जाति में हुआ। इन कथाओं के पीछे गुरु रविदास जी को पूर्व जन्म तथा इस जन्म का ब्राह्मण सिद्ध करने की भावना ही जान पड़ती है। किन्तु इस प्रकार की जनश्रुतियों को प्रमाण की कसौटी पर नहीं

कसा जा सकता । भावुकता प्रमाणों की परिधि से बाहर की वस्तु है । फिर पूर्व जन्म की कथाओं की सृष्टि करने वाले भी इन्हें इस जन्म में चर्मकार ही मानते हैं । ऐसी स्थिति में गुरु रविदास की स्वीकारोक्तियाँ तथा उन से सम्बन्धित समस्त उपलब्ध साहित्य के अनुसार हम बिना संदेह इस बात को घोषित कर सकते हैं कि गुरु रविदास जी चर्मकार जाति के थे । और वे चर्मकार का जीवन बिताते हुए भावइ भक्ति के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हुए ।

परिवार --

संत कबीर के माता-पिता कौन थे, इस बात का निश्चित रूप से पता नहीं चलता । प्रसिद्ध है कि किसी विधवा ब्राह्मणी को स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से पुत्र प्राप्त हुआ । परन्तु लोकलाजवश काशी के समीप लहरतारा नामक सरोवर में फेंक दिया, जिसे नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने पाला और उसका नाम ' कबीर' रखा ।

संत कबीर[74] के माता-पिता के सम्बन्ध में तीन मत हैं -

1. कबीर दिव्यगति सम्भूत महापुरुष थे ।
2. कबीर नीरु और नीमा के पोष्य पुत्र थे ।
3. कबीर नीमा और नीरु के औरस पुत्र थे ।

पहला मत श्रद्धालु संत कबीर भक्तों द्वारा प्रवर्तित जान पड़ता है । इस वैज्ञानिक युग में दैवी उत्पत्ति में सबका विश्वास होना बड़ा कठिन है । कुछ दूसरे श्रद्धालु संत कबीर को किसी विधवा ब्राह्मणी का

---

74. डा० गोविन्द त्रिगुणायत - कबीर की विचारधारा, पृ० - 43-44

पुत्र मानते हैं। दोनों मत वालों का विश्वास है कि संत कबीर नीरु और नीमा के औरस पुत्र थे। किन्तु अन्तःसाक्ष्यों से कहीं भी ऐसा आभास नहीं होता कि वे नीरु और नीमा के पोष्य पुत्र थे। मेरा अनुमान है कि वे नीरु और नीमा के औरस पुत्र थे। अन्तःसाक्ष्य से भी ऐसा प्रमाण मिलता है। 'पाई-पाई तू पुति हाई' जैसी पंक्तियां यही सिद्ध करती हैं कि संत कबीर नीरु और नीमा के औरस पुत्र थे। इसके अतिरिक्त --

'बापि दिलासा मेरो कीन्हा' (क० ग्र०)

हमारै कुल कोने राम कह्यो,
जब की माला लह निपूते तबते सुख न भयो।[75]

ये उदाहरण भी इसी मत की पुष्टि कर रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि संत कबीर नीरु और नीमा नाम के जुलाहा दम्पति के औरस पुत्र थे।

कहा जाता है कि इनके परिवार में छः प्राणी थे - माता-पिता स्त्री, पुत्र और पुत्री और स्वयं संत कबीर।

कबीरपंथी परम्परा के मानने वाले संत कबीर को गृहस्थ नहीं मानते। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में एक साखी आई है, जिसके अनुसार कमाल उनका पुत्र था और संत कबीर उससे खिन्न रहते थे। उनकी उक्ति -'बूड़ा वंस कबीर का, उपजा पूत कमाल' स्पष्ट करती है कि वे गृहस्थ थे।

संत कबीर[76] के एक पद से स्पष्ट होता है कि ज्ञान प्राप्त होने पर कनक और कामिनी का उन्होंने त्याग कर दिया था। कुछ लोग[77]

---

75. संत कबीर ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ - 60
76. संत कबीर - रागु बासा, पद -32, पृष्ठ - 24
77. गुरु ग्रन्थ साहब

यह मानते हैं कि लोई के अलावा कबीर साहब की एक स्त्री और भी थी, जिनका नाम धनियां या रमजनियां भी कहते हैं। गुरु ग्रन्थ साहब से संत कबीर के दो पद इस प्रकार हैं --

'मेरी बहुरिया को धनिया नाउ
ले राखिवो रमजनिया नाउ ।।
इन्ह मुंडिअन मेरा घर धुंधरावा ।
बिटवहि राम रमऊवा लावा ।।
कहतु कबीर सुनहु मेरी माई ।
इन मुंडीअन मेरी जाति गंवाई ।।'

तथा

'पहिली कुरुपि कुजाति कुलखनी साहुरै पैई वे बुरी ।
अबकी सरुपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी ।।[78]

उनके नाम से एक दोहा और भी चालू है, जिसे लेकर लोग यह कहा करते हैं कि उन्होंने अपनी पत्नी के विषय में खुद कहा है। वह पद इस प्रकार है ---

'नारी तो हम भी करी, बूझा नहीं विचार ।
जब जानी तब परहरी, नारी बड़ा बिकार ।।'

कहने का तात्पर्य यह है कि संत कबीर गृहस्थ अवश्य थे लेकिन ऐसी कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती, जिसके बूते पर कहा जा सके कि वे विवाहित थे।

---

78. डा० पारसनाथ तिवारी, कबीर, पृष्ठ -35,36-37।

पुत्र को कोई नाम देना माता-पिता का कार्य होता है, परन्तु यदि पिता के नाम के विषय में ही विवाद उत्पन्न हो जाये तो बात और भी उलझ जाती है। उनके माता-पिता का परम्परा सिद्ध और लोक प्रसिद्ध नाम रग्घू या रघू ही है। करमदास जी[79] ने 'रविदास-महिमा' में पिता का नाम भानदास ही दिया है। परन्तु साथ ही यह संकेत भी किया है कि उनका विख्यात नाम रघू था। इस विषय में डा० धर्मपाल मैनी[80] ने विस्तार पूर्वक चर्चा की है कि गुरु रैदास की गद्दियों के उत्तराधिकारी तथा अखिल भारतीय रविदासी महासभा के सदस्यों में यह विश्वास प्रचलित है कि गुरु रविदास जी के पिता का नाम रघू था।[81] गुरु रविदास गद्दियों के महंतों में यह बात प्रचलित है कि गुरु रविदास जी के पिता का नाम रग्घू था। यह सम्भावना भी निराधार नहीं है कि 'रविदास - रामायण' में दिए गए उनके पिता का नाम 'रहु' से ही 'राहु' कर दिया गया हो। इसलिए सुविधा के लिए लोक-प्रचलित नाम को ध्यान में रखते हुए हम गुरु रविदास के पिता का नाम रग्घू ही मानेंगे। संत रविदास की मां का नाम धुरबिनिया था। जो लोग इस बात से सहमत नहीं वे मानते हैं कि गुरु रविदास जी की मां का नाम करमा था। रविदास सम्प्रदाय के अनुयायियों में भी इन दोनों नामों में मतभेद है। आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद और डा० बी० पी० शर्मा पिता का नाम रघू और माता का नाम करमा देवी ही मानते हैं। गुरु रविदास जी के पिता का नाम रघू तथा माता का नाम करमा देवी ही मानना चाहिए, इसकी पुष्टि सब से पुराने ग्रन्थ में भी होती है।

---

79. करमदास - रविदास महिमा - पिता जानिये मानदास, रघू नाम विख्यात
कौस्तुभ मणि सम जानिए करमा देवी मान।

80. डा० धर्मपाल मैनी, रैदास, पृष्ठ-17-19

81. डा० धर्मपाल सिंघल, संत शिरोमणि रविदास (पंजाबी), पृष्ठ- 20

गुरु --

संत कबीर[82] के गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों में कई मत प्रचलित हैं। इनमें से तीन प्रमुख हैं --

(क) कबीर के कोई मानव गुरु ही नहीं थे।

(ख) कबीर शेख तकी के मुरीद थे।

(ग) कबीर स्वामी रामानंद के शिष्य थे।

प्रथम मत के अनुसार जो धारणा है कि संत कबीर ने किसी मनुष्य को अपना गुरु नहीं बनाया था। संत कबीर की रचनाओं में पाए जाने वाले 'गुरु' शब्द का अर्थ वे सर्वत्र ब्रह्म ही लेते हैं। मेरी समझ में तो संत कबीर अध्ययन करने पर स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि वे किसी महापुरुष के शिष्य अवश्य थे। इन्हीं महापुरुष से इन्हें राम-नाम रूपी गुरु मंत्र प्राप्त हुआ था। प्रस्तुत साखी से यह बात पूर्णरूपेण ध्वनित होती है--

'राम-नाम के पटतरे, देबे को कछु नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन मांहि।।[83]

अतः यह धारणा निरर्थक है कि संत कबीर जी ने किसी मनुष्य को गुरु नहीं बनाया था। संत कबीर ने अपनी वाणी में कहीं भी शेख तकी के प्रति श्रद्धा प्रकट नहीं की है, जिससे पुष्टि हो सके कि वे शेख तकी के मुरीद थे। तीसरे मत को मानने वाले संत कबीर को स्वयं रामानन्द का शिष्य मानते हैं। बहिर्साक्ष्य और अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह मत

---

82. डा० गोविन्द त्रिगुणायत - कबीर की विचारधारा, पृ० - 44-45

83. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 1, साखी - 4

तीनों में अधिक तर्क संगत और सम्भाव्य लगता है। यह ठीक है कि संत कबीर ने कहीं स्वामी रामानन्द का नाम नहीं लिया। किंतु केवल इसी आधार पर उन्हें स्वामी रामानन्द के शिष्यत्व से वंचित नहीं कर सकते। सम्भव है कि स्वामी रामानन्द के प्रति अत्याधिक श्रद्धा होने के कारण ही उन्होंने ऐसा किया हो। मेरी अपनी भी धारणा है कि वे स्वामी रामानन्द के ही शिष्य थे। परम्परा भी यह मानती आयी है कि स्वामी रामानन्द ही संत कबीर के गुरु थे। ' बीजक '[84] में एक स्थान पर रामानन्द शब्द का व्यवहार हुआ है। इस मत की पुष्टि में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं --

1. संत कबीर और स्वामी रामानन्द लगभग समकालीन थे। स्वामी रामानन्द युग के महान आचार्य थे। ऐसे महान आचार्य को छोड़ कर संत कबीर और किसी को अपना गुरु नहीं बना सकते थे।

2. स्वामी रामानन्द और संत कबीर की विचारधारा में बड़ा साम्य है। यह साम्य इसलिए है कि संत कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। शिष्य का गुरु की विचारधारा से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

3. संत कबीर और स्वामी रामानन्द के गुरु शिष्य के सम्बन्ध को ध्वनित करती हुई बहुत सी किंवदन्तियां भी प्रसिद्ध हैं। किंवदन्तियां कपोल-कल्पित और अतिरंजनापूर्ण होती हैं। किन्तु उनका मूलाधार सत्य निर्विवाद ही होता है। अतः इस आधार पर भी संत कबीर और स्वामी रामानन्द में हम गुरु और शिष्य का सम्बन्ध मान सकते हैं।

---

84. कबीर, बीजक, पृ0- 77, ' रामानन्द रामरस माते।
कहहि कबीर हम कहि-कहि थाका।'

संत कबीर ने लिखा है --

'कबीर गुरु बसे बनारसी, सिष समदा तीर ।
बिसार्‌या नहीं बीसरै, जै गुण होय सरीर ।।'

इस साखी से स्पष्ट प्रकट होता है कि संत कबीर के गुरु बनारस में थे । बनारस में उस समय स्वा०रामानन्द से महान और कोई दूसरा आचार्य न था । अत: उन्हें संत कबीर का गुरु मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए ।

इन तर्कों के आधार पर पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि संत कबीरदास जी स्वामी रामानन्द के ही शिष्य थे । उनकी सारी विचार-धारा स्वामी रामानन्द से प्रभावित है ।

संत कबीर की एक उक्ति इसी ओर संकेत करती है । --

'काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताए ।'

इस कथन से भी स्पष्ट यह कहा जा सकता है कि संत कबीर गुरु रामानन्द के ही शिष्य थे ---

संत कबीर और गुरु रविदास जी दोनों स्वामी रामानन्द के समकालीन एवं शिष्य थे । इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है ---

रामानंद को सिष कबीर, जिनि चिन्हो भगवंत[85]
भगति दिठावन औतरयो, गावै दास अनंत ।
करी कबीर भक्ति चित लाई, छांड़ी माया लोक बड़ाई ।
पल्ली तो दासा तन कीनो, बहुत सुष भगतन को दीनो ।

---

85. बी० पी० शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी - पृष्ठ - 24

जाति जुलाहा नाम कबीरा, जन सुष देवन कूं वहि सरीरा ।
नृगुण राम लियो पहचानी, वरु दूसरी नाहिं बानी ।
और येक रैदास चमारा , जानि नारद लीनौं अवतारा ।।
सूद्र कहो तो बावे लाजा, दरसन कारनि तलफै राजा ।
पंडित मरम न जानै कोई , विश्न समान बौतरै दोई ।।

(अनन्तदास की परिचई से)

स्वामी रामानन्द के प्रमुख बारह शिष्य थे ---

'अनन्तानंद, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि ।
पीपा, भावादन्द, रैदास, धन्ना, सैन, सुरसरि की धर हरि ।।'[86]

(भक्तमाल से नाभादास की)

अनन्तदास की परिचई में एक और स्थान पर भी गुरु रविदास जी के गुरु का उल्लेख करते हुए कहा है ---

'तब रामानंद विलंब न कीनौ ।
माथे हाथ चमरा के दीनौ ।
माथा तिलक दई अभय कराये ।
पाछै भजन सबै दुराये ।
सब ही के मन भया उलास ।
अस्थन पान करै रैदास ।।'

---

86. बी० पी० शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी - पृष्ठ - 25

शिक्षा --

जहां तक संत कबीर के विद्याध्ययन और पुस्तक ज्ञान का सम्बन्ध है उसमें वे बिल्कुल कोरे थे । उन्होंने नि:संकोच रूप से यह बात स्वीकार भी की है --

'विद्या न परउ वाद नहिं जानउ'

'तथा

'मसि कागद छुयो नहीं कलम गहि नहीं हाथ ।।' [87]

पुस्तक अध्ययन नहीं के बराबर होते हुए भी संत कबीर का जीवन अध्ययन बड़ा गहरा था । फिर सत्संगति से इन्हें ज्ञान का बहुत बड़ा अंश प्राप्त हुआ था । अन्तर्ज्ञान की तो उनमें किसी प्रकार से कमी न थी । इन्हीं सब कारणों से संत कबीर जी अपने युग के महान् उपदेशक और दार्शनिक बन सके थे ।

गुरु रविदास जी शिक्षित थे, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख गुरु रविदास जी ने नहीं किया । परन्तु जहां तक सम्भावना है वे भी संत कबीर की भांति अपढ़ रहे होंगे । गुरु रविदास जी बचपन से ही बड़े होनहार थे ।[88] ऐसा कहा जाता है कि बाल्यावस्था से ही इनका मन खेल-कूद में अधिक नहीं लगता था । वे ईश्वर की उपासना में ही मग्न रहते थे । सात वर्ष की अवस्था से ही प्रभु-भक्ति में समय बिताना शुरु कर दिया था ।

---

87. संत कबीर - रागु बिलावल , पद - 21 , पृष्ठ - 15

88. आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद, गुरु रविदास , पृष्ठ - 15

इनकी वाणी से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें विद्याजन से बहुत प्यार था । गुरु रविदास जी ने स्वाध्ययन सत्संगति से पर्याप्त विद्या की प्राप्ति की थी । वस्तुत: इनकी शिक्षा का उद्देश्य प्रभु-भक्ति ही था । इनकी वाणी से यह प्रकट भी होता है ---

'चलि मन हरि टकसाल पढ़ाऊं ,
गुरु की साहि, ज्ञान का अक्षर,
बिसरत सहज समाधि लगाऊं ।
प्रेम की पाटी, सुरति कर लेखनी,
ररं मम लिखि बाँक दिखाऊँ ।
इहि विधि मुक्त भये सनकादिक,
हृदय विचार प्रकाश दिखाऊँ ।।'

अत: कहा जा सकता है कि सन्तों में अपवाद स्वरूप ही कदाचित किसी की कोई लौकिक शिक्षा हुई हो । अन्यथा सभी ने गुरु-कृपा, सत्संग, पर्यटन तथा वातावरण एवं अन्त:ज्ञान से ही सीखा था । गुरु रविदास जी और संत कबीर जी की भी कोई विशेष शिक्षा नहीं हुई । उन्होंने स्वयं भी अपने मन को केवल हरि की ही पाठशाला में पढ़ने का संकेत दिया है ।

देशाटन, पर्यटन ---

संत कबीर का तीर्थाटन, हज, भ्रमण में विश्वास नहीं था । परन्तु यह सत्य अवश्य है कि वे हिन्दू- मुसलमान किसी भी साधु के दर्शन को अपना सौभाग्य समझते थे । उनकी दृष्टि में साधु-संगति के अतिरिक्त तीर्थों का कोई महत्व नहीं था - संत कबीर के लिए तो तीर्थ था ---

540445

'मथुरा जावै, द्वारका जावै, भावै जा जगनाथ।
साधु-संगति हरि-भगति बिन, कछु न आवै हाथ ।।'[89]

संत कबीर का विश्वास था कि जब तक मन शुद्ध नहीं है, तीर्थों से लाभ नहीं हो सकता । मन शुद्ध होने पर तीर्थ करना व्यर्थ है -

'मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जांणि ।
दसवां द्वार देहुरा, तामैं तोंतु पिछाणि ।।' [90]

संत कबीर तीर्थों के महत्व के साथ ही काबा यात्रा, हज को भी नकारते हैं ---

'सेख सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाई ।
जाकी दिल साबित नहीं, ताकउ कहां खुदाई ।।'[91]

संत कबीर के पास हर सम्प्रदाय के लोग आते रहते थे और वे स्वयं भी संतों से अधिक ज्ञान प्राप्ति के लिए देशाटन करते थे । उनकी अनेक वाणियों में पर्यटक की पैनी दृष्टि का परिचय मिलता है । कुछ कथन तो इतने स्पष्ट हैं कि जिन्हें पढ़ने के बाद सन्देह नहीं रह जाता कि संत कबीर ने देशाटन नहीं किया । वे हज या तीर्थ के लिए नहीं बल्कि सत्य की प्राप्ति के लिए देशाटन करते थे । इसे स्वीकारते हुए वे कहते हैं ---

'वृंदावन ढूंढ्यो, ढूंढ्यो हो जमुना के तीर।
राम मिलन के कारने जन खोजत फिरै कबीर ।।'

---

89. कबीर वचनामृत, साखी भाग , पृष्ठ - 143.
90. -- वही ---- , पृष्ठ - 13
91. -- वही ---- , पृष्ठ -185

एक जनश्रुति के अनुसार वे प्रसिद्ध भड़ौच स्थान के निकट कहीं ऐसी जगह भी गये थे जहां पर उन्होंने बरगद का पेड़ लगाया था और वह आज भी 'कबीर-वट' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके देशाटन के विषय में कोई संदेह की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि सदा सत्संग के इच्छुक रहने वाले व्यक्तियों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूर-दूर तक भटकना ही पड़ता है।

गुरु रविदास जी के [92] अनुयायी देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। इनके नाम पर बनी हुई गद्दियां, समाधियां एवं अन्य स्मारक चिन्ह भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि समय-समय पर गुरु रविदास जी ने उन स्थानों का भ्रमण किया था। प्राप्त कथाएं तथा साहित्य अपने समस्त मतभेद के बाद भी इस बात को स्वीकारते हैं कि गुरु रविदास जी केवल काशी तक सीमित नहीं रहे वरन् उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रायें भी की थीं।

झाली रानी[93] के निमन्त्रण पर गुरु रविदास जी के चित्तौड़ जाने की बात कही जाती है।

एक बार गुरु रविदास कुम्भ मेले के अवसर पर प्रयाग गए थे, जहां उनके प्रशंसकों ने उनका बहुत सम्मान किया, जिससे पंडित चिढ़ गए और गुरु रविदास जी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। इस शास्त्रार्थ में विजय पर गुरु जी ने लिखा ---

---

92. स्वामी रामानन्द शास्त्री, वीरेन्द्र पाण्डेय, संत रविदास और उनका काव्य पृष्ठ- 78

93. डा० धर्मपाल मैनी, रैदास - पृष्ठ - 21-22

'मूरति मांहि बसै परमेश्वर,
तो पानी मांहि तिरै रे।'

गुरु रविदास अपने जीवन में पर्याप्त देशाटन करते रहे। इनका विवरण प्रचलित लोक कथाओं में उपलब्ध होता है।

सम्वत् 1545 वि० में हरिद्वार में अर्ध कुम्भी मेला लगा था।[94] सन्त रविदास जी नरसी मक्ख आदि के साथ 'हरकी पैड़ी' पर स्नान करने आये थे। वहां पण्डों ने उनके विरुद्ध विद्रोह किया। परन्तु अपनी भक्ति के प्रताप से वे उनके दम्भ-चक्र में नहीं फंस सके। उन्होंने गंगा स्नान किया और सबके सामने एक दमरी गंगा जी को भेंट की। गंगा ने अपने हाथ बाहर निकल कर उसे ग्रहण किया। फिर भी दम्भी लोग नहीं माने और उनसे झगड़ा करने को उतारू हो गए। भगवान की दया और स्वयं गुरु रविदास जी की आत्मिक शक्ति से उन्हें हार माननी पड़ी। आजकल हरिद्वार में हर की पैड़ी के पास गुरु रविदास जी की भव्य मूर्ति इस बात का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु रविदास जी से सम्बन्धित सभी उल्लेखों और सामग्रियों में उनके प्रमाणों का न्यूनाधिक रूप में समर्थन किया गया है। बहता पानी और रमता जोगी[95] की कहावत यदि सत्य है तो गुरु रविदास जी की यात्राओं के सम्बन्ध में हमें अकारण संदेह नहीं करना चाहिए। एक पंथ के प्रवर्तक होने के नाते उनकी यात्रायें स्वाभाविक

---

94. जगवीर सिंह, सन्त रविदास महात्म्य, पृ०- 240
95. स्वामी रामानन्द शास्त्री, वीरेन्द्र पाण्डेय, संत रवि० और उनका काव्य, पृष्ठ -78-79

और अनिवार्य है। केवल अन्तर इतना है कि वे कहां-कहां और कितनी दूर तक गए। मथुरा, चित्तौड़, प्रयाग और हरिद्वार तक जाने का बहुत से ग्रन्थ और कथाएं समर्थन करती हैं।

आत्म साक्षात्कार --

संत कबीर अपनी उक्तियों द्वारा स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने आत्मसाक्षात्कार कर लिया था। वे मानते हैं कि ईश्वर मनुष्य के हृदय में तो निवास करता है, परन्तु उन्हें वे ही देख सकते हैं जिनका हृदय पवित्र और स्वच्छ है ---

'जो दरीन देखा चाहिए तो दर्पण मांजत रहिए।'

तथा

'प्रगटी जोति कपाट खोलि दिए, दगधे जम दुखकारा
प्रगटे विश्वनाथ जगजीवन, मैं पायो करत विचारा ।।[96]

कबीर आत्म साक्षात्कार के अनुभव को वर्णित करते हुए कहते हैं --

'उन्मनि मनवा सुन्नि समाना दुविध दुर्मति भागी।
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या, राम नाम लिव लागी ।।'[97]

आत्म साक्षात्कार के समय आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है तो परमात्मा आत्मा में प्रकट होकर संसार में घोषित करने लगता है --

---

96. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 179
97. -- वही --, पृष्ठ - 291

'मुझको कहां ढूंढे रे बंदे,
मै तो तेरे पास मैं ।।'[98]

कबीर ने आत्मज्ञान को जीवन का चरम लक्ष्य बताया है ।

उन्होंने अनेक बार यह कहा है -- अपने स्वरूप अर्थात् आत्म साक्षात्कार करने से शाश्वत् सुख की प्राप्ति होती है --

'आप ही आप विचारिये , तब कैता होइ आनन्द रे ।।'[99]

(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ -89)

अपने स्वरूप को जानने के बाद मनुष्य जन्म-मरण से छुटकारा पा जाता है ।

'कहे कबीर जे आप विचारै, मिटि गया आवन जांनां ।।'

(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-90)

आत्म साक्षात्कार कर लेना ही ब्रह्म को जान लेना है और परमपद की उपलब्धि हो जाना है ।

इतना ही नहीं उन्होंने स्वयं अपने अनुभव की बात भी कही है । वे कहते हैं कि जब से मैंने आत्म तत्व को पहिचान लिया, तब से काम-क्रोध , लोभ-मोह आदि विकारों से मुझे छुटकारा मिल गया है तथा निर्वैर एवं निस्संग हो कर मैं निर्भय हो गया ---

---

98. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर वाणी परिशिष्ट

99. डा० रामजीलाल सहायक , कबीर दर्शन , पृ० - 167-168

'जब थैं आतम तत्त विचारा ।
तब निर्वैर भया सबहि नर्यैं, काम क्रोध गहि डारा ।।'

(क० ग्रं० , पृ०-150)

गुरु रविदास जी[100] सांसारिक मायाजाल से विमुख प्रभु से साक्षात्कार के प्रयत्न में रत रहते थे । इसके साथ-साथ जूता आदि गांठ कर घर की आर्थिक व्यवस्था को सहयोग देने में लगे रहते थे । वे ईश्वर की आराधना करते-करते भाव विह्वल हो उठते थे --

'दर्शन दीजे राम दर्शन दीजे, राम विलम्ब न कीजे ।
दर्शन तोरा जीवन मोरा, बिन दर्शन ज्यूं जीवै चकोरा ।।[101]

गुरु रविदास जी ब्रह्म निष्ठ थे । धन्ना भक्त का पद इसे सिद्ध करता है ---

'रविदास ढुंढता ढोर नीति तिनि तिआगि माइआ ।
परगटु होआ साध संगि हरि दरसु पाइआ ।।'

जीवन सम्बन्धी किंवदन्तियां --

जिस प्रकार महापुरुषों के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित होती हैं उसी प्रकार संत कबीर के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियाँ का प्रचलन है । संत कबीर की महिमा के सम्बन्ध में उनके शिष्यों ने जो कथा प्रचलित कर दीं उन्हें इस प्रकार वर्णित किया गया है ।

---

100. डा० योगेन्द्र सिंह , संत रैदास , पृ० - 179
101. गुरु ग्रन्थ साहब , रागु आसा , पृष्ठ - 488

संत कबीर के जन्म से सम्बन्धित एक किंवदन्ति है कि काशी में एक ब्राह्मण रहा करते थे जो स्वयं रामानन्द जी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। ब्राह्मण देवता की एक विधवा पुत्री भी थी। एक दिन वे उसे लेकर स्वामी रामानन्द जी के आश्रम में गये। पुत्री के प्रणाम करने पर स्वामी रामानन्द ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण ने चकित होकर पुत्री का वैधव्य प्रकाशित किया तो उन्होंने कहा मेरा दिया गया आशीर्वाद अन्यथा तो नहीं जायेगा, परन्तु फिर भी जो पुत्र उत्पन्न होगा वह अत्यन्त प्रतापी तथा योग्य होगा।[102]

संत कबीर के जन्म से ही सम्बन्धित एक अन्य कथा प्रकाश में आती है कि संत कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की हथेली से हुआ, इसलिए वे 'करवीर' कहलाये।

संत कबीर[103] के सम्बन्ध में एक किंवदन्ति स्वामी रामानन्द विषयक है। कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द ने संत कबीर को अपना शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया। इस अस्वीकार का कारण जुलाहा परिवार में पैदा होना था। किन्तु संत कबीर में निष्ठा और लगन थी उन्हें एक उपाय सूझा। एक दिन वे ब्रह्म मुहूर्त में ही पंच गंगा घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गए, जिन पर से स्वामी रामानन्द जी नित्य गंगा स्नान करने जाया करते थे। नित्य की भांति स्वामी जी सीढ़ियों पर से उतर रहे थे तो संत कबीर के सिर पर उनके पैर की ठोकर लगी। गुरु जी ने राम-राम यह कर अपने पांव हटा लिए और चले गए।

---

102. डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर : एक विवेचन, पृष्ठ - 72-73

103. रामचरन कुरील - भगवान रविदास की सत्यकथा - सं० मधुकर मिश्र

संत कबीर ने इसी राम-राम को गुरु-मन्त्र मान लिया और स्वामी जी को अपना गुरु घोषित कर दिया। स्वामी जी ने जब इस विषय में संत कबीर से पूछा तो उन्होंने घाट वाली घटना निश्छल होकर सुना दी, जिससे प्रसन्न होकर उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया।

संत कबीर की सत्य के प्रति निष्ठा के विषय में भी कुछ किंवदन्तियां हैं। एक बार की बात है संत कबीर के घर बहुत से साधु-संत आ गए, परन्तु उनके स्वागत के लिए घर में कुछ नहीं था। संत कबीर चिन्तित हुए कि उनके भोजन आदि की व्यवस्था कहां से करें। लोई ने उनकी परेशानी भांप कर साहूकार के पास जाने की आज्ञा मांगते हुए कहा कि साहूकार मुझ पर आसक्त है, इसलिए मेरी बात नहीं टाल सकता। मैं शीघ्र ही उससे रुपये लाकर इन्तजाम करती हूं। साहूकार के पुत्र से शाम को आने का वचन देकर, वह रुपये लेकर लौट आई। घर जाकर लोई ने संत कबीर से सारा वृत्तान्त बताया। शाम होते ही आकाश गरजती हुई काली घटाओं से घिर गया। मूसलाधार पानी बरसने लगा। संत कबीर ने अपने वचन पालन के लिए लोई को कम्बल उढ़ा कर उसी समय साहूकार के घर पहुंचा दिया। साहूकार ने जब देखा कि लोई भीगी नहीं है तो पूछा -- पानी से बचकर कैसे आई ? तो लोई ने सब बात सच बता दी, जिसे सुनते ही साहूकार का अहंकार दूर हो गया। वह संत कबीर के पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगा।

संत कबीर उदारता के लिए भी प्रसिद्ध थे। वे एक बार थान बुन कर बाजार में बेचने गए। वे अभी कुछ ही दूर पहुंचे थे कि एक व्यक्ति ने गिड़गिड़ाते हुए कुछ मांगा। संत कबीर ने तुरन्त ही आधा थान फाड़ कर उसे दे दिया। परन्तु उसके कहने पर कि यह तो कम है, बाकी बचा हुआ थान भी उसे दे दिया।

संत कबीर[104] की मृत्यु से सम्बन्धित एक घटना है कि उनकी मृत्यु के अवसर पर उनके शव को जलाने और दफनाने को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों में विवाद उठ खड़ा हुआ। बताया जाता है कि उसी समय आकाशवाणी हुई। तब संत कबीर के शव पर से चादर उठाई गई तो शव पर कुछ फूल पड़े मिले, जिन्हें मुसलमानों और हिन्दुओं ने आधा-आधा बांट लिया। हिन्दुओं ने फूलों को ले जा कर काशी में समाधिस्थ किया और वह स्थान अभी तक कबीर-चौरा के नाम से प्रसिद्ध है। मुसलमानों ने अपने हिस्से के फूलों को ले जाकर मगहर में ही कब्र बनाई।

गुरु रविदास जी के जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनायें तथा किंवदन्तियां प्रकाश में आती हैं, जिससे गुरु जी के व्यक्तित्व के कुछ पक्ष उभर कर आते हैं और कुछ उनके जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है।

गुरु रविदास जी की प्रसिद्धि से उत्पन्न विरोध को लेकर एक कथा प्रचलित है कि काशी के पंडितों का विरोध बहुत उग्र था। वे कहते हैं कि गुरु रविदास की प्रसिद्धि से आतंकित ब्राह्मण और पंडित काशी के राजा के पास गए और काशी नरेश से इस बात की शिकायत की कि एक शूद्र भगवान की पूजा कर रहा है, जनता में धर्म का प्रचार करता है, इन पंडितों की दृष्टि से यह अनुचित था। काशी-नरेश भी इस बात से सहमत थे कि धर्म का प्रचार करने का अधिकार ब्राह्मणों तथा योग्य पात्रों को ही है। इसलिए काशी नरेश ने गुरु रविदास जी की योग्यता की

---

104. श्री चन्द्रवली पाण्डेय, कबीर का जीवन वृत

परीक्षा लेने का निश्चय किया । काशी नरेश ने दोनों पक्षों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया । शास्त्रार्थ में बड़ी संख्या में जनता भी श्रोताओं के रूप में आई । गुरु रविदास जी के तर्कों के समक्ष पंडितों का पक्ष निर्बल सिद्ध हुआ । पंडितों ने प्रयास किया कि कोई निर्णय ही न हो सके । ऐसी स्थिति में जनता की इच्छानुसार भगवान् का सिंहासन मंगवाया गया और दोनों पक्षों को उस सिंहासन पर विराजमान मूर्ति का आह्वान करने को कहा गया । उन दोनों पक्षों को यह बात बताई गई कि जिसके आह्वान पर मूर्ति आकर गोद में बैठ जायेगी वही पक्ष विजयी घोषित होगा । पराजित पक्ष को विजयी पक्ष को सिंहासन पर बैठा कर कंधों पर उठा कर नगर में घुमाना होगा । पंडितों ने पहले आह्वान किया, मन्त्र पढ़े परन्तु मूर्ति में कोई स्पन्दन लक्षित नहीं हुआ । गुरु रविदास जी के आह्वान पर मूर्ति आकर उनकी गोद में बैठ गई । गुरु रविदास जी को सिंहासन पर बैठा कर पंडितों को नगर में घुमाना पड़ा ।[105]
गुरु रविदास जी की यह पंक्ति इसी घटना की सूचक मानी जाती है ।

`ऐसो लाल तुझ बिन कौन करै ।
दीन दयाल गुसईयां मेरे आए हत्र धरै ।।`

एक अन्य कथा[106] इस प्रकार है -- गुरु रविदास जी के आश्रम पर कथा-कीर्तन में बहुत भीड़ लगी रहती थी । एक सेठ जी भी उस कीर्तन में गए । नित्य की भांति कीर्तन के पश्चात चरणामृत वितरण हुआ । सेठ जी ने लोक दिखावे के लिए चरणामृत ले तो लिया परन्तु

---

105. डा० धर्मपाल मैनी - रैदास , पृष्ठ - 19-20.
106. डा० योगेन्द्र सिंह - संत रैदास , पृष्ठ - 206

गुरु रविदास के शूद्र होने के कारण उसको ग्रहण नहीं किया, सिर के ऊपर करके फेंक दिया । वह चरणामृत सेठ जी के कपड़ों पर गिर गया । घर जाकर सेठ जी ने नहा धोकर वह सारे कपड़े एक भंगी को दान में दे दिये थे । भंगी के उन कपड़ों को पहनते ही उसका शरीर कांतिमय हो गया और सेठ को गलित कुष्ठ हो गया । जब सेठ को ज्ञात हुआ कि उसने एक सच्चे भक्त का अपमान किया है, जिसके कारण उसे यह कष्ट हुआ और चरणामृत पड़े कपड़े जिस भंगी को दिए उसका शरीर कांतिमय हो गया । तब वह बहुत दुखी हुआ और उसने गुरु रविदास जी के चरणों में गिर कर क्षमा मांगी । संत स्वभाव के अनुरूप गुरु रविदास ने सेठ को क्षमा कर दिया और सेठ पुनः पूर्ण स्वस्थ हो गया ।

निष्कर्षतः दोनों संतों के जीवन से जुड़ी चमत्कारिक घटनाओं से इतना तो स्पष्ट है कि वे अपने जीवन के चरमोत्कर्ष काल में थे तथा अपने अनुयायी भक्तों तथा श्रेष्ठ कहे जाने वाले ब्राह्मण वर्ग तथा उच्चासीन संत भी उनके संतत्व के समक्ष अवनत होने में गौरव का अनुभव करते थे ।

तृतीय अध्याय

गुरु रविदास जी और संत कबीर की विचार धारा

-0-0-0-0-0-

संतों की अनुभूति की अभिव्यक्ति सहज होने के कारण ही मानवीय चेतना की जिस गरिमा को लेकर चलती है वह चिन्तन से अधिक हृदय की रागात्मिका वृत्ति से जुड़ी है। इसलिए उनकी विचारधारा को किसी सम्प्रदाय में आबद्ध करना अन्याय है। परन्तु ब्रत, जीव, माया, जगत के प्रति उनकी क्या विचारधारा रही, यह ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। गुरु रविदास और संत कबीर कोई दार्शनिक नहीं थे और न ही उन्होंने किसी दार्शनिक ग्रन्थ को लिख कर दर्शन की कोई पद्धति चलाने की चेष्टा की है। ये संत मूलतः भक्त थे तथा सामने आने वाली समस्याओं के प्रति एक ईमानदार चिंतक की भांति उन्होंने समस्याओं पर सत्वपूर्ण प्रतिक्रियाएं दी हैं। इन संतों का ज्ञान इतना अध्ययन से नहीं था जितना कि सत्संग, भ्रमण तथा परम्परा से प्राप्त था। विभिन्न दार्शनिक समस्याओं पर गुरु रविदास तथा संत कबीर का कोई पृथक विवेचन ग्रन्थ तो प्राप्त नहीं होता किन्तु उनकी बानी में से हम विभिन्न दार्शनिक विचारों और उनकी साधना के सम्बन्ध में उनके विचार ज्ञात कर सकते हैं।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना -

किसी अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा मानव की आदिकालीन प्रवृत्ति रही है। जब से उसने चिंतन प्रारम्भ किया तभी से बाहर होने वाले प्राकृतिक व्यापार एवं घटनाओं के पीछे किसी अव्यक्त सत्ता का आभास उसे होता रहा।

गुरु रविदास जी ने जिस ब्रह्म का चित्रण किया है वह निर्गुण निराकार न होकर क्रियात्मक रूप से सगुण निराकार है और उसका सबसे महत्वपूर्ण गुण शरणागत को गरिमा प्रदान करना है। सम्भवत: उनकी इस विचारधारा को देख कर ही कुछ विद्वानों ने उन्हें सगुण साकार का पुजारी माना है। गुरु रविदास जी के आरम्भिक कुछ पदों में ऐसा भाव देखने को मिल सकता है लेकिन श्री गुरु ग्रन्थ-साहिब में उल्लिखित तथा उनकी परवर्ती प्रामाणिक रचना के आधार पर उनके जिस ब्रह्म के दर्शन होते हैं, वह मूलत: निराकार ही है और भक्त जन उसे सगुण बना देते हैं। इस सन्दर्भ में गुरु रविदास का प्रमुख स्वर यही है कि उनकी शरण में आये बिना जीव के लिए कोई और मार्ग नहीं है, वही एकमात्र सच्चा शरणदाता है ---

'बिनु रघुनाथ शरनि काकी लीजै '[107]

गुरु रविदास जी के अनुसार यह सारी सृष्टि उसका अपना ही प्रसार मात्र है, परन्तु यह शाश्वत नहीं है, यह तो शीघ्र ही झड़ जाने वाले कुसुम्भ फूल के रंग के समान क्षणिक ही है --

'जैसा रंग कुसुम्भ का तैसा इहु संसार '

उपासना[108] के भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयत्न वस्तुत: विरोधी जैसी दीखने वाली वर्णनशैलियां हैं, जिन्हें निराकार, साकार, निर्गुण, सगुण तथा भक्ति ज्ञान मार्ग आदि से अभिहित किया गया है। जब वे उस परब्रह्म में सम्पूर्ण गुणों का आरोप कर संसार तथा सम्पूर्ण मूर्त को उसी से उद्भूत मानता है तब वह सगुणवादी हो जाता है, जब उसे सम्पूर्ण ब्रह्म में एक ही सत्ता दृष्टिगोचर होती है, जब साधक या चिंतक

---

107. आदि ग्रन्थ , पृष्ठ - 710 , पद - 1
108. रैदास , पृष्ठ - 15

इस सबको मानकर भी यह कहता है कि वह तो यह नहीं है, इससे परे है, यह सब सम्पूर्ण संसार, अनुभूति का क्षेत्र तो निचला स्तर और इससे भिन्न है तब इस परात्पर के साथ निराकारवाद की पूर्व पीठिका प्रस्तुत हो जाती है। इस प्रकार यह परस्पर विरोधी जैसी दीखने वाली विचारधारायें परस्पर विरोधी न हो कर ब्रह्मविषयक जिज्ञासा की तुष्टि के अनेकानेक प्रयास हैं, जो विविधता में भी एक सूत्र में बंधे हुए हैं और वह सूत्र है परम् सत्ता के प्रति अनन्त जिज्ञासा, अथक खोज और विकल अनुभूति।

संत कबीर की निर्गुण उपासना का स्वरूप भारतीय भक्ति धारा के बहुत समीप था। भारतीय भक्ति धारा के दो रूप अन्यत्र कहे गए हैं उनमें से एक ज्ञान प्रधान भी था। संत कबीर की भक्ति इसी के अन्तर्गत आती है। जिस समय हम भक्ति के इस रूप पर विचार करते हैं जो ज्ञान और भक्ति के सामंजस्य की ओर संकेत करता है। यही सामन्जस्य संत कबीर की निर्गुण भक्ति की आधार शिला है। संत कबीर ने सगुण अवतारों तथा मूर्ति पूजा को न मानकर सूफियों के ढंग पर निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना की। उन्होंने आत्मा-परमात्मा में अभेद मानकर निर्गुण के साथ एक हो जाने की साधना की।

संत कबीर की भक्ति को देखते समय विशेष ध्यान देने की बात यह है कि निर्गुण उपासना के समर्थक संत कबीर अपनी वाणी में साकार को नहीं भुला पाते हैं। वे उस स्वरूप से संबंधित अनेक उदाहरण दे जाते हैं जो साकार की प्रतिष्ठा करते हैं ---

1. 'राजन कौन तुमारे आवै ।
ऐसो भाव विदुर को देख्यो, बहु गरीब मोहि भावै ।
(दुर्योधन) हस्ती देखी भरम ते भूला हीर भगवान न जाना ।।[109]

2. 'महापुरुष देवाधिदेव नरसिंह प्रगट कियो भगति भेष ।
कहे कबीर कोई लहै न पार, प्रह्लाद उबार्‌यो अनेक बार ।।[110]

कुछ विद्वानों का ये कथन है कि एक नये पंथ को चलाने के लिए कबीर ने निर्गुण उपासना का प्रचार-प्रसार किया । उनकी इस उपासना में तथ्य केवल इतना है कि संत कबीर ने एक नया पंथ चलाया और उसमें निर्गुण उपासना का प्रमुख स्थान रहा । किन्तु कबीर पंथ में निर्गुण भक्ति की मान्यता पंथ के आग्रह से नहीं थी, समस्या के हल के निमित्त थी । संत कबीर पंथवादी थे, यह समझना भ्रम होगा । किन्तु यह सत्य है कि उन्हें एक नया पंथ चलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी क्योंकि वे एकतावादी थे ।

भगवान[111] को संत कबीर ने निर्गुण राम ' कह कर संबोधित किया है वह समस्त ज्ञात तत्वों से भिन्न है फिर भी सर्वमय है , वह अनुभव गम्य है, केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है । इसी भाव को बताने के लिए संत कबीर ने बार-बार 'गूंगे का गुड़ ' कह कर उसे याद किया है --

---

109. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 318 , पद - 176
110. -- वही --
111. हजारी प्रसाद द्विवेदी , कबीर , पृष्ठ - 136

"अविगत अकथ अनुपम देख्या कहतां कह्या न जाई,
सैन करै मन ही मन रहसै गूंगे जानि मिठाई ।।"[112]

वह किसी भी दार्शनिक वाद के मानदण्ड से परे है, तार्किक बहस के ऊपर है, पुस्तकीय विधा से अगम्य है, पर प्रेम से प्राप्य है। अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भक्ति है, यही संत कबीर की निर्गुण उपासना है। संत कबीर 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण सांसारिक जीवों को संबोधन करते हैं और उसे उपदेश देते हैं कि - हे भाई निर्गुण राम का जप करो। अविगत की गति लिखना सहज नहीं है।

ब्रह्म -

विभिन्न विशेषणों का आरोप करके भी संत कबीर ने परमतत्त्व का वर्णन किया है। उन्होंने अपने ब्रह्म को 'एक' कहा है, जिसके आधार पर उन्हें एकेश्वरवादी सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है, किंतु संत कबीर ने अपनी रचनाओं में इस्लाम के एकेश्वर तथा अपने 'एक ब्रह्म' के अन्तर को स्पष्ट किया है ---

"मुसलमान कहै एक खुदाई।
कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्यो समाई ।।"[113]

शहंशाह के रूप में प्रतिष्ठित इस्लाम का खुदा संख्या में बंध जाता है। संत कबीर का स्वामी तो एक होता हुआ भी घट-घट व्यापी है और संख्या से अतीत है। संत कबीर अपने 'एक ब्रह्म' का वर्णन करते हुए

---

112. कबीर ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पद - 6, पृष्ठ -116
113. कबीर ग्रन्थावली, पद - 330, पृष्ठ - 92

कहते हैं कि जो उस एक ब्रह्म को जान सका उसने सब कुछ ही जान लिया ।

संत कबीर ने ब्रह्म को मूलतत्व कहा है जो ब्रह्म का परमार्थिक सत्य है । वह काल, देश और अवस्था से परे अर्थात् सर्वथा अतीत है । वह अवच्छिन्न है । विश्व की कोई सीमा उसे बांध नहीं सकती । विश्व के सभी पदार्थ विनाशशील तथा परिवर्तनशील हैं परन्तु विश्व का आधार होते हुए भी ब्रह्म अविनाशी है ।

ब्रह्म कारण से परे है , वह किसी अन्य का कार्य नहीं । किसी दूसरी सत्ता ने उसे निर्मित नहीं किया । उसके मां नहीं और न ही बाप है, न वह उत्पन्न होता है , न ही मृत्यु को प्राप्त होता है । उसने किसी को उत्पन्न नहीं किया और न किसी अन्य ने उसे पैदा किया अर्थात् ब्रह्म कार्य-कारण सम्बन्ध से रहित, अजन्मा, अमर, निर्विकार तथा अविनाशी है ।

'माय न बाप आन नहिं जावा, न बहुजण्या न को डहि जावा ।

संत कबीर संसार को अवस्तु में वस्तु का आरोप कहते हैं । संसार असत् है । उसकी परमार्थिक सत्ता नहीं है । वह अध्यास तथा विवर्त का कारण है जो संसार सत्य जैसा प्रतीत होता है । अंधकारपूर्ण रात्रि में रस्सी को देख कर भ्रम से कोई उसे सर्प समझ लिया जाता है और भ्रमपूर्ण मनुष्य में भय का संचार हो जाता है जब कि तत्वतः सर्प का भ्रम असत्य है और रस्सी तत्वतः सत्य है । इस प्रकार ब्रह्म ही परम् सत्य है और जगत् असत्य है ।[115]

---

114 . कबीर ग्रन्थावली , पद - 124 , पृष्ठ - 242

115. -- वही -- पृष्ठ - 198

ब्रह्म स्वयं प्रकाशक है अर्थात् उसमें अपने को प्रकट करने का स्वाभाविक गुण है। काष्ठ में अग्नि व्याप्त रहती है। उस अग्नि के रूप को कोई देख नहीं पाता। जब वह स्वयं को अभिव्यक्त कर देता है तो उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसी प्रकार ब्रह्म स्वयं प्रकाश्य है। वह अपने को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है ---

"बिना जुगति कैसे मथिबा जाई, काष्टै पावक रह्या समाई।
कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि सम करई"।।[116]

संत कबीर ने ब्रह्म का वर्णन भांति-भांति से किया है। ब्रह्म का प्रतिपादन करने के हेतु वे जो भी उपयुक्त भाषा, वातावरण, नाम, साधन प्रयत्न आदि उपलब्ध कर सके उनकी सहायता से ब्रह्म का वर्णन किया।

परमतत्व के इस स्वरूप में गुरु रविदास जी की प्रबल आस्था है। वे कहते हैं संसार का कर्ता एक ही है और वह 'सब राम' है। संत कबीर की भांति गुरु रविदास जी भी बार-बार उद्घोषित करते हैं कि जगत का कर्ता एक है और वह सर्वव्यापी है। उनका 'एक' का अर्थ ईश्वर के अनुपम, अद्वितीय अलौकिक आदि के अर्थ में है।

अव्यक्त ब्रह्म को सत्य एवं ज्ञानरूप में चित्रित किया है संत कबीर और गुरु रविदास दोनों ने। उन्होंने एकेश्वर को ही सत्य माना है। तथा ज्ञान का रूप माना है।

गुरु रविदास जी भी संत कबीर के इस मत का समर्थन करते हैं, उनका ब्रह्म सुख-दुख से परे है अर्थात् उसे सुख-दुख व्यापता नहीं --

---

116. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 236

"जोग न भोग रोग नहीं जाके, कहा नाम सतजाई ।[117]

गुरु रविदास जी ब्रह्म को अनिर्वचनीय मानते हैं और उसका अनेक विशेषणों से वर्णन करते हैं कि वह सदा एक रस है, वह निर्गुण, निराकार उदय, अस्त से रहित, सर्वव्यापक, निश्चल, अजन्मा, अनुपम, निर्भय, अगोचर, अजर, अतर्क्य, अनादि, अनन्त, निर्विकार और अविनाशी है । वह ब्रह्म न रूप-रहित है , न रूपवाला, वह चन्द्रमा, सूर्य, रात, दिन, पृथ्वी, आकाश आदि कुछ भी नहीं है । उसमें न कर्म है और न अकर्म, न शुभ है न अशुभ, न शीत है न उष्ण, न भोग है । वह निरंजन, निराकार, निर्लेप निराकार तथा निष्पाप है ।[118]

संत कबीर शब्द से समस्त संसार की उत्पत्ति मानते हैं । उनका कथन है कि शरीर में शब्द ब्रह्म का अनहद नाद हो रहा है और इसमें रम जाने से मनुष्य माया के भ्रम में नहीं पड़ता । गुरु रविदास जी भी अपने ब्रह्म को ओंकार मानते हैं और तीनों लोकों में व्याप्त बताते हैं ।[119]

संत कबीर ने मृत्यु के उपरांत शून्यरूप ब्रह्म में विलीन होने की कल्पना की है ।[120]

"ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे , सुन्निहिं मांहि समावहिंगे ।"

---

117. संत रविदास-और उनका - स्वामी रामानन्द शास्त्री, वीरेन्द्र पाण्डेय, पद - 9 पृष्ठ -100
118. जस हरि कहिए, तस हरी जाहिं है अस जस कछु तैसा । वही- पृ0-77
119. -- वही -- विमल एक रस उपजे -- जीवन मुक्ति निधि कासी , पृ0-7
120. कबीर ग्रन्थावली - पृष्ठ - 95, पद - 150

गुरु रविदास जी की विचारधारा भी इस सम्बन्ध में यही है -

"जहां का उपज्या तहां समाय, सहज शून्य में रह्यो लुकाय ।"

संत कबीर ने अपने प्रभु को 'सहज' कहा है । उनका कथन है कि संसार में सब सहज-सहज तो पुकारते हैं किन्तु वास्तविक रूप में सहज तो ईश्वर है जिसे कोई पहचान नहीं सका । परन्तु गुरु रविदास जी की वाणी में सहज रूप में परब्रह्मतत्व का वर्णन नहीं मिलता ।[121]

वे अपने ब्रह्म को सभी भेदों से परे बताते हैं । उनका ब्रह्म वेद, भेद, पाप, पुण्य, ज्ञान, ध्यान, अस्थूल, शून्य, वेश, भिक्षा तथा तीनों लोकों के सभी पदार्थों से विवर्जित है । गुरु रविदास जी भी अपने ब्रह्म को सदा अतीत एवं ज्ञान से विवर्जित बताते हैं ।

यद्यपि संत कबीर और गुरु रविदास दोनों ही निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं परन्तु इन्होंने सगुण रूप के प्रति भी आस्कि प्रकट की है । संत कबीर ने ब्रह्म को सत्य माना है जो सद्गुरु की सेवा से ही प्राप्त किया जा सकता है ।[122] वे उस ब्रह्म को ज्ञान स्वरूप भी कहते हैं । गुरु रविदास जी के राम भी इस जगत् के कर्ता हैं और एकमात्र सत्यस्वरूप हैं ।[123]

संत कबीर ने ब्रह्म का वर्णन ज्योतिरूप में भी किया है । वे ब्रह्म को शरीर के भीतर ब्रह्म रूप में स्थित बताते हैं ।[124]

---

121. कबीर ग्रन्थावली , साखी- 4 , पृष्ट - 230

122. --- वही --- , पद -345 , पृष्ट 82 (सति सत सत्गुरु की सेवा,
पूजहूं राम निरंजन देवा)

123. संत रविदास और उनका काव्य - पद - 9

124. कबीर ग्रन्थावली , पद - 205 , (सरीर सरोवर भीतरे आदै कमल अनूप ।
परम ज्योति पुरुषोत्तमो, जाकै रेख न रूप ।

शब्द रूप ब्रह्म की धारणा अत्यन्त पुरातन है । इनकी वाणी में कहा गया है कि यह ओंकार ही ब्रह्म है। यही परमतत्व है। संत कबीर शब्द से ही सारे संसार की उत्पत्ति मानते हैं। उनका कथन है कि शब्द ब्रह्म का अनहदनाद ही रहा है और इस प्रकार बिना तार के ही वीणा झंकृत हो रही है। यह अनहद नाद संसार में सर्वत्र और मनुष्य के भीतर हो रहा है तथा इसमें रम जाने से मनुष्य माया के भ्रम में नहीं पड़ता -

"कबीर सबद शरीर में, बिनु गुण बाजे तांति
बाहरि भीतरि भरि रह्या तासूं छूटी भ्रांति ।।" [125]

(साखी क० ग्र०)

शब्द ब्रह्म के प्रतिरूप 'ओंकार' को उन्होंने विश्व का मूलतत्व कहा है ।

गुरु रविदास जी भी अपने ब्रह्म को ओंकार कहते हैं और उसे वटबीज के समान सूक्ष्म होते हुए भी तीनों लोकों में व्याप्त बताते हैं ।[126] कहीं-कहीं मृत्यु के उपरान्त शून्यरूप ब्रह्म में समाने की कल्पना भी संत कबीर ने की है ।[127]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दोनों संतों का ब्रह्म निर्गुण-सगुण, द्वैत-अद्वैत, निरपेक्ष-सापेक्ष आदि सभी कल्पनाओं के अन्तर्गत भी है और बाहर भी । वह सभी स्थितियों, चेतन-अचेतन, व्यक्त-अव्यक्त, सूक्ष्म-स्थूल, साकार-निराकार से भिन्न भी है और अभिन्न भी । वह

---

125. कबीर ग्रन्थावली, सबद को अंग - साखी - 1 ऊंकार आदि है मूला
राजा परजा एकहि सूला ।

126. संत गुरु रविदास वाणी , बी० पी० शर्मा - पद - 1, पृ० - 95

127. कबीर ग्रन्थावली , पद - 150 , (ऐसे हम लोकतें बिछुरे
सुन्निहि मांहि समावहिगे ।

ब्रह्म निराकार हो कर भी जगत का सृष्टा और निर्गुण होते हुए भी दया आदि गुणों से परिपूर्ण है। इस परमतत्व को विभिन्न रूपों में व्यक्त करने की प्रवृत्ति दोनों ही संतों में समानरूप से विद्यमान है। गुरु रविदास जी की वाणी में परमतत्व का विस्तृत एवं गंभीर वर्णन है। दोनों संतों की ब्रह्म भावना एक जैसी है। कभी-कभी गुरु रविदास जी ब्रह्म को सगुण रूप में चित्रित करते प्रतीत होते हैं परन्तु ऐसा है नहीं। वे अपने परात्पर ब्रह्म को गुण और निर्गुण से परे कहते हैं।

"गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके, कहौ तो बात सयानी।"[128]

संत कबीर और गुरु रविदास जी दोनों संतों की ही ब्रह्म-भावना प्रायः एक जैसी ही है।

जीवात्मा, जीव ---

प्रायः जिसे हम जीवित या मृत देखते हैं उसे जीवात्मा कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं। क्योंकि जो जन्म लेता है मरता भी अवश्य है। परन्तु वह जीवात्मा न हो कर पंचतत्वों से निर्मित शरीर है। जीवात्मा तो चिरंतन सत्य है जिसका नाश कभी नहीं होता। माया का वह बंधन जो आत्मा को जीव बनाता है वह सत्य नहीं है परन्तु इसमें निहित शाश्वत तत्व वह सत्य है और परम तत्व से भिन्न नहीं।

अपनी ब्रह्म भावना से अद्वैतवाद से अनुप्राणित हमारे संत कवियों ने सर्वदा आत्मा और ब्रह्म को एक रूप कहा है। जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः एक ही है। किन्तु व्यवहारिक स्वरूप में जीवात्मा शरीरबद्ध होने के कारण भिन्न प्रतीत होते हैं। इस बात को जल और कुम्भ की

---

128. संत रविदास और उनका काव्य, पद - 11
स्वामी रामानन्द पाण्डेय, वीरेन्द्र पाण्डेय।

भांति स्पष्ट किया। जिस प्रकार जलाशय का जल एवं उसके भीतर विद्यमान घट का जल पृथक-पृथक रहने से भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु घड़ा टूट जाने पर जिस प्रकार ज्ञान द्वारा माया एवं भ्रम का निर्मूलन कर देने पर जीवात्मा एवं परमात्मा की स्थिति एक-सी हो जाती है।[129]

गुरु रविदास जी भी जीव-ब्रह्म के अभेदत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा तो एक ही है किन्तु हम भ्रम के व्यामोह में पड़ कर उन्हें भिन्न समझने लगते हैं जैसे सोना और उससे गढ़े आभूषणों में भिन्नता की जाती है। संत कबीर ने जीवात्मा को एक माना है, उनके अनुसार आत्मा एक है तथा वह सर्वव्यापी तत्व है। ईश्वर ने एक तत्व से ही सभी रूपों का निर्माण किया है, परन्तु उनके विभिन्न रूपों का निर्माण किया है, परन्तु उनके विभिन्न रूपों में एक ब्रह्म का ही वास है। इन संतों ने अनुभव किया कि नामरूपात्मक प्राणियों में दीख पड़ने वाली अनेकता के अन्तर में आत्मतत्व का ऐक्य-प्रवाह अन्तःसलिला की भांति प्रवाहमान है। विभिन्न वर्ण वाली दस गायों को दुहा जाता है तो उनमें भिन्न-भिन्न रंग का नहीं, एक ही रंग का दूध निकलता है --

'पंच बरन दस दुहिई गाइ, एक दूध देख्यो पतिआई'।[130]

इसी प्रकार एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न शरीरों में प्रतिबिम्बित हो रही है। संत कबीर एवं गुरु रविदास जीवात्मा के अद्वैयत्व में विश्वास रखते हैं। इनकी विचारधारा शंकर के केवलाद्वैतवाद के अधिक निकट है। संत कबीर का स्पष्ट कथन है कि जैसे जल में एक व्यक्ति के अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं उसी प्रकार आत्मा एक है जो अनेक रूपों में दिखाई देती है --

---

129. डा० पदम गुरुचरण सिंह, संत रविदास विचारक और कवि, पद - 5, पृष्ठ - 202 (ये एक पै भ्रम सूं दूनो, कनक अलंकृत जैसे।')

130. कबीर ग्रन्थावली, पद - 53, पृष्ठ - 107

गुरु रविदास जी कहते हैं --

"ज्यूं जल में प्रतिव्यंब, त्यूं सकल रामहि जाणिज ।[131]
एक अनेक अनेक एक हरि, कहो कौन विधि दूजा ।"[132]

संत कबीर के अनुसार जीवत्व और परमतत्व की अभिन्नता सत्य है। उन्होंने अपने राम को 'आतमराम' कहा है -

"कौन विचार करत हो पूजा । आतमराम अवर नहीं दूजा"।[133]

वे जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। उनका विचार है कि जो कुछ दृश्यजगत् में दृष्टिगोचर होता है वह मिथ्या है, नाशवान् है, परमतत्व ही सत्य है। जीवात्मा भी उसी का अंश होने से नहीं मिट सकता। ब्रह्म और जीवात्मा के परस्पर सम्बन्ध के विषय में संत रविदास संत कबीर की ही भांति अंशांशिभाव में विश्वास रखते हैं। वे अपने इस मत के समर्थन में सलिल और सागर का दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। उनका विचार है कि जैसे जल सागर की लहर में प्रवेश करता है और जल तथा सागर की लहर मिलकर एक हो जाते हैं और जल-जल में विलय हो जाता है। उसमें जीव मिलकर एकाकार हो जाते हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं रह जाता ---

1. "हैरत-हैरत है सखी, हृदया कबीर हिराइ ।
बूंद समानी समद में, सोकत हेरी जाई"।।[134] (कबीर)

2. "सलिल गवन कियो लहर, मदोदधि जल केवल मांहि"।[135] (रविदास)

---

131. कबीर ग्रन्थावली , साखी-9 , पृष्ठ - 136
132. रैदास जी की बानी - पृष्ठ - 24 , बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स ।
133. कबीर ग्रन्थावली , पद - 135 , पृष्ठ - 109
134. -- वही --- साखी - 3, पृष्ठ -135
135. रैदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स , पृष्ठ - 28

संत कबीर ने जीवतत्व को निर्गुण और निराकार माना है। कहीं-कहीं उसके साकार रूप की भी अवतारणा हो गई है। साकार रूप में वर्णन करते हुए वे उसे व्यक्ति का जीवन कहते हैं जो दीपक की ज्योति के समान देखते हैं। मनुष्य का शरीर तो एक समान है जो आत्मा रूपी ज्योति से प्रकाशमान रहता है और जिसके बुझते ही मानव जीवन का अन्त हो जाता है ---

'मन्दिर मांहि भपूकती, दीवा कैसी जोति।
हंस बटाऊ जलि गया, काढौ घर की कोंदि।।[136]

गुरु रविदास जी की वाणी में जीवत्व का परिचय विविध रूपों में नहीं मिलता क्योंकि उनके जीवत्व विषयक वर्णन में वह व्यापकता नहीं जो कबीर वाणी में है। फिर भी वे जहां ब्रह्म और आत्मा के एकत्व और बद्धत्व का परिचय कराने लगते हैं। वहां उनकी वाणी में कबीर-सी ही सरलता और स्पष्टता देखते ही बनती है।

संत कबीर ने जीवात्मा की अनेक कोटियों का वर्णन किया है। माया में आबद्ध जीव को उन्होंने अज्ञानी जीव कहा है और बताया है कि अज्ञानी पुरुष को मधुर-माया भूल-भुला कर अपने मोहपाश में जकड़ती है ---

'मीठी-मीठी माया तजी न जाई।[137]
अग्यानी पुरुष को मौलि-मौलि खाई।।'

---

136. कबीर ग्रन्थावली, काल को अंग, साखी - 17.
137. -- वही --, पद - 202, पृष्ठ - 140

परन्तु ज्ञानी जीव की बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश होता है और वह अपने स्वरूप का चिन्तन करता है और वह जीव निज स्वरूप में निमग्न रहता है तथा उसे अद्वैत तत्व की प्राप्ति हो जाती है।

'राम कबीरा एक भये हैं, कोई न सके पहानी'।[138]

सन्त कबीर कहते हैं कि रात्रि समाप्त होने पर चकवा और चकवी तो मिल जाते हैं परन्तु 'जो नर बिछुरे राम सिउ न दिन मिले न राति।' इसलिए ब्रह्म और आत्मा का यह परस्पर पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

'हरि मेरो पिउ हउ हरि की बहुरिया।'[139]

गुरु रविदास जी के अनुसार भी ब्रह्म पति है तो जीव पत्नी, वह स्वामी है तो जीव दासी। यदि ब्रह्मपिता है तो जीव पुत्र है। दोनों एक ही साथ निवास करते हैं। पानी की तरंग और बुदबुद जिस प्रकार जल से भिन्न नहीं है उसी प्रकार जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

शुद्ध चैतन्य रूप में जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु माया मोह में फंसे हुए जीव और ब्रह्म में अन्तर अवश्य आ जाता है। वह पारस है तो जीव लोहा, वह चन्दन है तो जीव एरण्ड, ब्रह्म दीपक है तो जीव बाती, ब्रह्म मोती है तो जीव धागा है।[140] डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने जीव के स्वरूप दर्शन के कारण ही अद्वैतवाद और विशिष्टा द्वैतवाद का प्रभाव प्रदर्शित करते हुए कहा है कि दार्शनिक मतवादों की

---

138. कबीर ग्रन्थावली, साखी - 10, पृष्ठ - 138
139. डा० धर्मपाल मैनी - संतों के धार्मिक विश्वास, पृष्ठ -219-220
140. बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स - रैदास जी की बानी।

भूमिका में गुरु रविदास जी के समक्ष दो समस्यायें थीं। ऊंच-नीच की भावना से ओत-प्रोत समाज में व्यक्ति की मर्यादा की प्रतिष्ठा और अपने आचरण की शुद्धि द्वारा सांस्कृतिक चेतना का जागरण कराना।

जीव-जीव की एकता द्वारा संत कवि ने सामाजिक वैषम्य को दूर करना चाहा और सबको समान भाव से आत्मसाक्षात्कार का अधिकारी सिद्ध किया और आचरण की शुद्धि के लिए जीव को ब्रह्म से भिन्न माना है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तात्विक रूप से जीव परम तत्व से अभिन्न होकर मोह-माया ग्रस्त होने के कारण भिन्न हो जाता है, परन्तु विशुद्ध परम तत्व और जीव तत्व में अन्तर नहीं रह जाता।

माया ---

कबीर दर्शन की माया भ्रमरूपिणी है। इसी कारण स्वरूप विस्मृत हो जाता है। परूप ही स्वरूप, भासित होने लगता है। परन्तु यथार्थतः परूप कभी भी स्वरूप हो ही नहीं सकता। भ्रम के कारण ही नामरूपात्मक जगत, शरीर तथा इन्द्रियों में सत्यत्व प्रतीत होने लगती है। भ्रांत बुद्धि के कारण ही अयथार्थ का यथार्थ बोध होने लगता है।

माया सदसद विलक्षणा है। मायिक जगत अपनी आवश्यकता के कारण सत तो नहीं है परन्तु असत भी नहीं है। माया सत असत से विलक्षणा ही नहीं अनिवर्चनीय भी है। उसके स्वरूप का निर्वचन नहीं हो सकता। सत रज तथा तम त्रिगुणों से सम्पन्न माया परस्पर गुण परिणाम शालिनी है। जितना ही उसके विरोध के लिए प्रयत्न किया

जाता है उतना ही वह और दृढ़ होती जाती है। माया वस्तुतः मिथ्या है, सर्वव्यापी है, चंचल है, अविनाशी है, फिर भी माया की सत्ता त्रिकालबाधित नहीं है। तत्वज्ञान होते ही उसका भी विनाश हो जाता है।[141]

माया का आवरण तथा विक्षेप दो शक्तियां हैं। आवरणशक्ति से माया वास्तविक स्वरूप को प्रच्छन्न कर देती है, तो विक्षेपशक्ति से उससे अन्य की अवास्तविक सृष्टि भी वही कर देती है। कबीर दर्शन की माया ब्रह्माश्रित है। वह ब्रह्म की लीला शक्ति है। भ्रम ही झीनी माया है। वह माया अनिर्वचनीय है।

संत कबीर ने सुख-दुख, आवागमन एवं जगत् का मूल कारण माया को माना है। जहां शास्त्रों ने माया को अविद्या और विद्या के संबंध से दो प्रकार का माना है, साथ ही उन्होंने उसको असत्य भी कहा है। उन्होंने माया को मिथ्या कह कर छोड़ने का उपदेश दिया है ---

"मिथ्या करि माया तजौ सुख सहज बीचारि।"[142]

वे कहते हैं कि आत्मा-परमात्मा के बीच अन्तर डाल कर दोनों की पृथक प्रतीति कराने वाली शक्ति माया है। माया ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण है। इन्द्रियों द्वारा यह जीव नाना प्रकार के विषयों का आनन्द लेता हुआ ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है जब वह अपने आत्म-तत्व को भूलकर इस शरीर को ही आत्मा समझने लगता है, यही उसका अज्ञान है। माया के बंधन को झूठा कह कर उसका संबंध भ्रम या अज्ञान से जोड़ते हुए कहते हैं ---

---

141. कबीर साहब, श्री दास, पृ0 - 2, प्रकाशक, बाबूलाल जैन, फाल्गुन महावीर प्रेस, मेलपुर, वाराणसी।

142. कबीर ग्रन्थावली, पद - 10, पृ0 - 19

"झूठी माया आप बंधाया ज्यौं नलनी भूमि सुवा ।"[143]

संत कबीर-गुरु रविदास जी दोनों ने ही अपनी रचनाओं में बार-बार माया विषयक विचारों को व्यक्त किया है और अपने वर्णनों में माया की कटु एवं तीव्र निन्दा की है । माया तत्व के चित्रण की यह प्रकृति तो वैदिक काल से ही प्रचलित रही है ।

यह प्रकृति की माया ही है परन्तु जो माया चैतन्य ब्रह्म को ईश्वर रूप में प्रकट करती है वह सत्व गुण प्रधान है, अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण का अभाव है । कुछ वेदान्ती आचार्य प्रकृति को दो प्रकार की मानते हैं - विशुद्ध सत्व प्रधान और अविशुद्ध सत्व प्रधान । पहली को 'माया' कहते हैं, दूसरी को 'अविद्या' । पहली ईश्वर की उपाधि है तो दूसरी जीव की । इसलिए कहा जा सकता है कि माया ही संसार को चला रही है । इस भाव को लक्ष्य कर के संत कबीर ने कहा है कि यह रघुनाथ की माया ही है जो शिकार खेलने निकली है और साम्प्रदायिक जालों में फंसा कर मुनि, पीर, जैन, योगी, जंगम, ब्राह्मण और सन्यासी को मार रही है ---

"तू माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड ।
चतुर चिंकाणो गिनि-गिनि मारे कोई न छोड़या नेड़े ।
मुनिवर पीर दिगम्बर मारे जतन करता जोगी ।
जंगल माहि के जंगम मारे तूंर फिरै बलवन्ती ।
वेद पढ़ंता ब्राह्मण मारा सेवा करता स्वामी ।
अरथ करता मिसर पछुया तूंर फिरै मैमन्ती" ।

---

143. कबीर ग्रन्थावली , पद - 10 , पृष्ठ - 19

साषित कै तू हरता करता हरि भगतन की चैरी ।
दास कबीर राम कै सरनै ज्यूं लागी ल्यूं तोरी ।।"[144]

संत कबीर ने माया की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन किया है और कहा है इस माया रूपी लता का विस्मयकारी गुण वर्णनातीत है। यदि इस माया रूपी बेलि का उच्छेदन किया जाता है तो वह और अधिक पल्लवित हो उठती है किन्तु यदि उसे ईश ध्यान रूपी जल से सींचा जाए तो वह कुम्हला जाती है।[145] गुरु रविदास जी की रचनाओं में माया के इस अनिर्वचनीय रूप का चित्रण नहीं मिलता। संत कबीर ने माया को 'ठगिनी' की संज्ञा दी है और कहा है कि उस ठगिनी का परित्याग करने की कितनी ही चेष्टा करें, वह पीछा नहीं छोड़ती। जल, आकाश एवं स्थल में सर्वत्र उसकी परिव्याप्ति है और वह कभी तप-जप एवं योग के रूप में बंधन डाल देती है। संत कबीर ने माया को डाइन, सांपिनी, पापिनी और मोहिनी भी कहा है। गुरुरविदास जी भी माया के मिथ्यात्व का ही प्रतिपादन करते हैं तथा इसे समस्त जगत् को त्रयताप में विदग्ध करने वाली है ---

"झूठी माया जग डहकाया, तीन ताप दहे रे।
कहै रैदास राम जप रसना, माया कैसे संग रहे रे"।[146]

आत्मा और परमात्मा की स्थिति भिन्न मानी जाती है तथा आत्मा और परमात्मा के बीच व्यवधान डाल कर दोनों में भिन्नता की प्रतीति कराने वाली शक्ति माया कही गई है। संत कबीर ने इस माया

---

144. हजारी प्रसाद द्विवेदी, - कबीर - पृष्ठ - 119
145. कबीर ग्रन्थावली, पद - 178, पृष्ठ -230-231
146. -- वही ---, पृष्ठ -380

को ब्रह्म की सृष्टि माना है और उसे नटराज की नटसारी की संज्ञा दी है ---

"जिन नट वै नटसारी साजी, जो खेले सो दीखे बाजी ।"[147]

सत्य तो यह है कि माया परमात्मा की शक्ति है । उसी की प्रेरणा से वह सारे क्रिया-कलापों को सम्पन्न करती है और वही उस माया से जीव की रक्षा करती है ---

"तेरे देव कमलापति सरन आया, मुझ जनम संदेह भ्रम छेद माया ।"

चूंकि माया का अस्तित्व भगवान पर आश्रित है । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उसका अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है । परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है । क्योंकि उसी के कारण समस्त भेदों की सृष्टि होती है । संत कबीर के शब्दों में आनन्दस्वरूप मायावी राम स्वयं अपनी माया का सृजन करता है और उसी में स्वयं को छिपा लेता है ।

"सत रज तम थैं कीन्ही माया । आपन मांझै आप छिपाया"।[148]

गुरु रविदास जी का कथन है कि माया इतनी प्रबल है कि सुर, नर, मुनि तो उसके भ्रमजाल में फंस ही गये हैं योगी, तपी और सन्यासी तक इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके । यह मनुष्य को ही नहीं, जीव मात्र को भी पीड़ित करती है । जल की मछली, आकाश का पतंग, पृथ्वी का हाथी और भुजंग आदि सभी माया से बिंधे हुए हैं ।[149]

---

147. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 380

148. -- वही -- , पद - 186 , पृष्ठ - 227

149. -- वही -- , पद -76 , पृष्ठ -112

"चंचल मनुआ चहुंदिसी ध्यावै, पांचो इन्द्री थिर न रहावै"।[150]

इस प्रकार माया का प्रभाव देवताओं से लेकर साधारण जीवों तक दिखाई पड़ता है। समस्त संसार को इसने प्रभावित कर रखा है।

गुरु रविदास जी माया ग्रस्त मन को कूप में पड़े मेंढक के समान बतलाते हैं। माया ग्रस्त प्राणी में और ममता से ग्रस्त होता है और गुरु रविदास जी इस भवचक्र से छुटकारा पाने के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं --

"मैं ते तोरि मोरि असमझियाँ, कैसे करि निस्तारा।
कहे रैदास कृस्नु करुणाम्य, जै जै जगत आधारा"।।[151]

इसी प्रकार एक स्थल पर माया के भ्रम के भूले हुए मनुष्य को वे खाली हाथ झाड़ जाने की चेतावनी देते हैं ---

"माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि।
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रति हारि।
कहे रैदास सत वचन गुरु के, सो जिवते न बिसारि"।[152]

गुरु रविदास जी संसार, माया, शरीर, और शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान को असार मानते हैं। इस असार या थोथे पदार्थों को ब्रह्म के स्वरूप से अलग कर देना चाहिए। जिस प्रकार सूप के पछोरने पर सार रह जाता है और थोथा अलग रह जाता है या उड़ जाता है उसी प्रकार आत्मज्ञान द्वारा उपलब्ध ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर माया का स्वरूप

---

150. डा० पद्म गुरुचरण सिंह, सन्त रविदास: विचारक और कवि, पद - 78, पृष्ठ - 116
151. बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, रैदास जी बानी, पृ० 34
152. -- वही --- पृष्ठ - 25

नाश हो जाता है। आत्मज्ञान ही मन को ब्रह्म के समीप लाने वाला है। यह मन संसार रूपी समुद्र में मच्छ के समान है। काम, वासना, विषय, आशा और तृष्णा मन को आत्मज्ञान साधन से अलग करते है। गुरु रविदास जी इस विषय वासनाओं को सांप के समान मानते हैं। वे कहते हैं ----

"रे मन माइला संसार समुद्रे, तूं चित्र विचित्र विचारि रे।
जेहि गाते गलिए ही मरिये, सो संग दूरि निवारि रे"।[153]

इन्द्रियां अनेक प्रकार के विषय जन्य पापों की प्रेरक है। उस ब्रह्म की भक्ति करने वालों को ये विषय वासनायें दुखी नहीं करती हैं ---

"सवि षंग कराल बहिर्मुख, ग्रसति सुटल सुभेष।
निरखि मारषी बके व्याकुल, लोभ कालर देख।
इन्द्रियादिक दुक्ख दारुन, असंख्यादिक पाप।
तेहि भजन रघुनाथ अन्तर, ताहि त्रास न ताप।।"[154]

इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की प्रमुख विशेषता उसकी परिवर्तनशीलता है। संसार की जितनी वस्तुयें है सब माया रूपिणी एवं परिवर्तनशीला हैं। इसीलिए माया को अत्यन्त गतिवान् माना गया है --

"कबीर माया डोलनी, पवन बहै ह्विधार"।[155]

---

153. बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स -- रैदास जी की बानी, पृष्ठ - 25
154. -- वही --- , पृष्ठ - 22
155. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 228

माया वास्तव में भेद बुद्धि है वह एकत्व के वैनिकस्व की प्रतिष्ठा करती है। यही कारण है कि माया को 'तोर - मोर' रूप कहा गया है ---

'मोर तोर करि जरै अपारा, मृग तृष्णा झूठी संसारा।'[156]

'मोर तोर' वास्तव में मृग तृष्णा के द्योतक हैं। जब तक मनुष्य में 'मोर, तोर' रूपिणी भेद बुद्धिमूलक माया बनी रहती है तब तक उसे सुख-शान्ति नहीं मिलती। वह सब प्रकार से दुख रूपा है। संत कबीर ने एक स्थल पर माया को त्रिविध अर्थात त्रिगुणों का वृक्ष कहा है और दुख सन्तापादि उस वृक्ष की शाखायें हैं ---

'माया तरुवर त्रिविध का साखा दुख सन्ताप।
सीस लता सुपिने नहीं फल फीको तन ताप।।'[157]

माया और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संत कबीर ने मन को माया का निवास स्थल बतलाया है 'इक डायन मेरे मन बसे नित उठ मेरे जिय को डसे'[158] कह कर उन्होंने यह बात प्रकट की है कि वह मन में रहने के कारण सदैव ही दुख दिया करती है। जिस प्रकार शरीर के नष्ट होने पर मन का नाश नहीं होता, उसी प्रकार माया भी अनश्वर है --

'माया मुई न मन मुवा मरि-मरि गया सरीर'।[159]

---

156. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 233
157. -- वही -- , पृष्ठ - 34
158. -- वही -- , पृष्ठ -168 , पद - 236
159. -- वही -- , पृष्ठ - 137

कबीर ने माया को भक्त और भगवान, जीव और ब्रह्म के मिलन में बाधक माना है --

"कबीर माया पापड़ी हरि सूं करै हराम ।
मुख कड़ियाली कुमति की कहन न देई राम ।।"[160]

गुरु रविदास जी ने स्थूल माया का प्रतीक सम्पूर्ण परिवार तथा सारा ही जगत् माना है और स्थान-स्थान पर उससे बचने के संकेत भी दिए हैं।

सारांशतः दोनों संतों ने माया को स्वतन्त्र सत्ता न मान कर ईश्वर के अधीन माना है। इसी माया के कारण जगत् की सृष्टि होती है और उसी के कारण प्रसार। यह माया ही मोह बन कर असत्य को मोहक बनाती है। माया के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही रूप मिथ्या हैं। इनसे बचने के लिए गुरु की शरण लेनी चाहिए। यह माया सर्पिणी की भांति मोहक किन्तु विष भरी है। इसलिए गुरु ही माया के प्रपंचों से बचने के लिए परमात्मा भक्ति का मार्ग दिखाता है। लोभ, क्रोध, तृष्णा, मोह, ममता और काम आदि माया के आकर्षक रूप हैं, इसलिए भगवद् कृपा से ही मनुष्य इस पर विजय प्राप्त कर सकता है। परमात्मा की भक्ति से ही माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है। मनुष्य इस परमतत्व से सामीप्य प्राप्त करता है।

संत कबीर की ही भांति गुरु रविदास जी ने भी माया के मिथ्यात्व का खण्डन किया है, परन्तु खण्डन-मण्डन की शैली से परे रहने के कारण वे संत कबीर की भांति माया की प्रकृति का उपहास उतने विस्तार से नहीं कर पाये, परन्तु फिर भी उन्होंने माया सम्बन्धी अपनी विचारधारा में मौलिकता दिखाई है। इन्होंने परंपरागत मायावाद में निषेधात्मक और पलायनवादी रुचि को कोई महत्व प्रदान नहीं किया।

---

160. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 32

जगत -

युग-युगान्तर से मनुष्य अपने सब ओर प्राकृतिक सौन्दर्य एवं दृश्यों को देख कर आश्चर्य चकित होता रहा है । अनेक योजन विस्तार वाला नीलाकाश, प्रकाशपुंज सूर्य, चन्द्रमा, अगणित तारागण, प्राणप्रद वायु, सम्पूर्ण जगत् का पेय जल तथा समुद्र आदि अनेक कुतूहलपूर्ण वस्तुओं की उत्पत्ति , स्थिति आदि के सम्बन्ध में मनुष्य ने विचारना शुरू किया ।

उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, सृष्टि के भेद जानने की । मनुष्य के मन में प्रश्न उपस्थित हुए, यह विश्व किसने बनाया ? यह किस प्रकार बनाया गया ? इसका आधार कौन है ? इन प्रश्नों को सुलझाने के लिए उसने गवेषणा और अन्वेषण किया ।

विश्व के अत्यन्त प्राचीन ज्ञान-स्त्रोत वेदों में सृष्टि-जिज्ञासा के दर्शन होते हैं ।

संत कबीर सत्यान्वेषी एवं तत्वान्वेषी थे । उनके मन में सृष्टि जिज्ञासा का प्रकटीकरण स्वाभाविक था । उनकी कृतियों में सृष्टि विषयक जिज्ञासा अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है ।

संत कबीर की आंखों के सामने ब्रह्माण्ड का दृश्य उपस्थित था । वे भी भांति-भांति के रूपों में संयोजित प्राकृतिक उपादानों को आश्चर्यचकित होकर देखते थे और अपने आप ही प्रश्न करते --

'कहो भइया अम्बर कासूं लागा, कोई जानैगा जाननहार सभागा ।
अम्बर दीसै कैता तारा, कौन चतुर रैसा चितरनहारा ।।[161]

---

161. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 133

संत कबीर के मन में आकाश के आधार को जानने की जिज्ञासा हुई। ये तारे, ये अन्य उपकरण क्या हैं? कैसे बने? किसने बनाये? तथा कौन है वह चित्रकार जिसने यह आश्चर्यजनक जगत् चित्र बना दिया?

नामरूपात्मक जगत् के आगे भी उनकी दृष्टि गयी। भौतिक उपकरणों से हट कर उन्होंने प्राणि जगत् की ओर भी दृष्टिपात किया ---

'उपजै प्यंड प्रान कहां थैं आवै, मूवा जीव जाइ कहां समावै'।[162]

प्राणि का जन्म शरीर रचना, प्राणों की उत्पत्ति, उनका विलय, शरीरान्त के उपरान्त प्राण कहां समा जाते हैं आदि प्रश्न भी उनके मन में उपस्थित हुए। जिज्ञासु संत कबीर को उत्कण्ठा हुई कि इस विश्व का किस क्रम से किसके द्वारा निर्माण किया गया? इसकी रचना हुई थी अथवा नहीं। जहां मूलतत्व है वहां कुछ है भी या कुछ भी नहीं है।[163]

'प्रथम गगन कि पुहमि प्रथमैं प्रभु, प्रथमै पवन कि पांणि।
प्रथमै चंद कि सूरज प्रथमै प्रभु, प्रथमै कौन विनांणि॥
प्रथमै प्राण कि प्यंड प्रथमै प्रभु, प्रथमै रकत कि रैतं।
प्रथमै पुरुषै कि नारी प्रथमैं प्रभु, प्रथमैं बीज कि खेत॥
प्रथमै क्सिस कि रैणि प्रथमैं प्रभु, प्रथमै पाप कि पुन्य।
कहै कबीर जहां बसहुं निरंजन तहां कुछ आदि कि सुन्य॥'[164]

संत कबीर की सृष्टि विषयक जिज्ञासा बड़ी उत्कण्ठा लिए हुए है। जगत् संबंधी सभी प्रश्न उनके मन में उत्पन्न हुए हैं। संत कबीर की इस जिज्ञासा ने उन्हें सृष्टि का स्वरूप, विकास, स्थिति आदि पर विचार करने के लिए प्रेरित किया।

---

162. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 133
163. डा० रामजीलाल सहायक, कबीर दर्शन, पृष्ठ - 203
164. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 142-143

सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है। समस्त जगत् या इसके प्रत्येक विषय को एकसा अन्ततः सत्य या पारमार्थिक सत्य नहीं कह सकते। भौतिक जगत् परिवर्तनशील तथा विनाशशील है। इसमें प्रत्येक क्षण परिवर्तित होते ही रहते हैं। जगत् का इन्द्रियगोचर रूप बड़ा ही आकर्षक और मनमोहक है। मनुष्य इसी में उलझ कर इसका आस्वादन करने में लिप्त रहता है। इसके अधिष्ठान, पारमार्थिक सत्य की ओर उसका ध्यान जा भी नहीं पाता।

'ऐसा तेरे कूंठा मीठा लागा, ताथे सांचे सूं मन भागा।'[165]

संत कबीर ने भौतिक जगत् को असत् कहा है, उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है।

प्रगाढ़ निद्रा में मनुष्य भांति-भांति के स्वप्न देखता है, जागने पर वे स्वप्न उसके लिए व्यर्थ हो जाते हैं। स्वप्न क्षण भर के लिए ही सत्य से थे, या वे असत्य हैं। इसी प्रकार यह संसार भी स्वप्न के समान असत्य है ----

'समझि बीचारि जीउ जन देखा, यहु संसार सुपन करि लेखा'।[166]

बाजीगर खेल दिखा कर हमें भ्रम में डाल देता है, परन्तु स्वयं बाजीगर भ्रम में नहीं पड़ता। जादूगर के लिए वह कार्य, जो हमारे लिए भ्रम है, खेल मात्र है। इस प्रकार माया भी ईश्वर के लिए इच्छा मात्र है और हम लोग जो अज्ञानी हैं, उसे देख कर भ्रम में पड़ जाते हैं और एक ब्रह्म के बदले अनेक विषय देखने लग जाते हैं। संत कबीर ने जगत् को बाजीगर

---

165. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 171

166. -- वही -- , पृष्ठ -234

का खेल ही समझा । सबने यह खेल ही देखा, परन्तु वसली तत्व को किसी ने भी भ्रम के कारण नहीं समझा । किसी ने उसके वसली तत्व को नहीं देखा --

'बाजी नाचे कौतिग देखा, जो नचावे सो किनहुं न पेखा ।'[167]

सृष्टि का प्रारम्भ किस काल में हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता । अत: माया अनादि है । जो कुछ ज्ञानी संसार की भूल-भुलैया में नहीं पड़ कर जगत् को ब्रह्ममय देखते हैं, उनके लिए न कोई भ्रम है, न माया, न यह संसार ही । ब्रह्मज्ञानी संत कबीर ने कहा ---

'अब हम जाना हो हरी बाजी का खेल ।
डंका बजाय देख तमाशा, बहुरि सो लेत सकेत ।।'

इस प्रकार संत कबीर गुरु रविदास जी जगत् की परमार्थिक सत्ता स्वीकार नहीं करते । इनका विचार है कि परमार्थिक सत्ता तो केवल ब्रह्म की है और वही सम्पूर्ण जगत् में व्यक्त हो रहा है । सैद्धान्तिक दृष्टि से यह जगत् मिथ्या है और नश्वर है । परमात्मा इसका रचयिता है जो कि अनश्वर है । संसार की नश्वरता की उपमा कुसुम्भ के फूल से दी गई है --

'जैसा रंग कुसंभ का तैसा इहु संसारु ।
मेरे रमइये रंग मजीठ का कहु रविदास चमार ।।'[168]

वे कहते हैं कि संसार नश्वर है ---

'बिनु देखे उपजै नहीं आसा ।
जो दीसै सो होई बिनासा ।।'[169]

---

167. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ -231
168. रैदास जी की बानी - वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स , पद -4 , पृष्ठ -16
169. -- वही -- पद - 11 , पृष्ठ - 19

संत कबीर कहते हैं कि असत्य वही है जो उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाता है तथा सत्य वह है जो स्थिर रहने वाला हो, जबकि यह जगत् जल की बूंद के समान क्षणभंगुर है, इसीलिए यह सत्य नहीं है --

'ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लौ न बारा ।' [170]

गुरु रविदास जी के अनुसार यह संसार स्वप्नवत् है । वे उस राजा का उदाहरण देते हैं जिसने स्वप्न में अपने राज्य को पहले तो खो दिया, परन्तु निद्रा के पश्चात् ही पुनः राज्य प्राप्त कर लिया । इसी प्रकार प्रभु ज्ञान की भक्ति के पश्चात् यह संसार और उसके दुख आदि स्वप्नवत् अर्थात् अस्तित्वहीन लगते हैं ---

'नरपति एक सिंघासनि सोइआ सुपने भइआ भिखारी ।
अछत राज बिछुरत दुख पाइआ सो गति भई हमारी ।।' [171]

गुरु रविदास जी की विचारधारा के अनुसार यह संसार परमात्मा की बाजी है, परन्तु यह बाजी झूठ है और बाजीगर अर्थात् परमात्मा सत्य है ---

'बाजीगर सं कहिए, बाजी कूं मरम न जाना ।
बाजी झूठ, सांच बाजीगर जाना मन प्रतियाना ।' [172]

संत कबीर ओंकार से जगत् का मूल कारण मानते हैं और तीनों लोकों के विस्तार एवं प्रसार के तथ्य को संकेतित करते हैं । वे नूर से सृष्टि की अवतारणा का उल्लेख करते हैं ---

---

170. कबीर ग्रन्थावली , पद - 120 , पृष्ठ - 81
171. रैदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स , पद - 2 , पृष्ठ-10
172. -- वही --- , पद -13 , पृष्ठ - 36

'अल्ला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा ।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ।।' [173]

संत कबीर परमात्मा को ही जगत् का कर्त्ता बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार एक वणिक अपने हाट का प्रसार करता है उसी प्रकार सृष्टा ने निखिल विश्व का प्रसार किया है ---

"जैसे बनिये हाट पसारा, सेब का सो सिरजनहारा" [174]

व्यवहारिक रूप में यही संसार विधेयात्मक तथा कार्यक्षेत्र के रूप में माना गया है । गुरु रविदास जी इस दुख भरे संसार को कर्मक्षेत्र के रूप में मानते हैं । वे मनुष्यों को सत्कर्म करने का उपदेश देते हैं ---

'अब की बेर सुकृत करीजा ।
बहुरे न यह गढ़ पायबे ।।' [175]

गुरु रविदास जी कहते हैं कि सांसारिक सम्पत्ति दुख देने वाली है । प्रभु की भक्ति नहीं करने पर नरक के कष्टों को झेलना होगा ---

'हरि सा हीरा छांडिकै, करै आन की आसा ।
ते नर जमपुर जांहिगे, सत भाषै रविदासा ।।' [176] ।

ज्ञानी व्यक्ति के निकट एक ब्रह्म ही अवस्थित रहता है । ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति में संत कबीर ने अपने को ही ब्रह्म के समकक्ष कहा है । हम सब में हैं और सब हम में है । हम से दूसरा कोई है ही नहीं । तीन

---

173. कबीर ग्रन्थावली , पद - 51 , पृष्ठ -36
174. -- वही -- , पद - 103 , पृष्ठ -138
175. संत रैदास , पद -65, पृष्ठ - 176
176. -- वही -- , पद -65 , पृष्ठ -176

लोक में हमारा विस्तार है, आवागमन हमारे लिए क्रीड़ामात्र है। छः दर्शन हमारा स्वरूप वर्णन करते हैं, हम सबसे परे, निर्गुण, निराकार रूप में अवस्थित है। हम ही ब्रह्म हैं, कबीर हैं और अपने आप अपना ही रहस्य स्वयं जानने का प्रयास भी हमारा ही है।[177]

इस प्रकार संत कबीर ने जीवात्मा तथा जड़जगत् में केवल मूलतत्व ब्रह्म को ही देखा। वह सर्वत्र व्याप्त है। सब कुछ वही है। परमार्थिक सत्य तत्व की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व, उसके विषय तथा जीवात्मा सब में वही है, केवल वही है। अतः ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है।

संत कबीर के अनुसार अज्ञान के आवरण से आच्छादित प्राणी के लिए वास्तविक है। जगत् के बंधन में पड़ा हुआ व्यक्ति जगत् को झूठ कहे, यह अव्यवहारिक है। इसी कारण साधक प्रारम्भ में जगत् को झूठ कहे वह अव्यवहारिक है। इसी कारण साधक प्रारम्भ में जगत् के उपकरणों के सहारे ही उस मूलतत्व को खोजता है। ब्रह्म की अभिव्यक्ति नामरूपात्मक जगत् में हुई तो अवश्य, पर जगत् का यह स्वरूप व्यवहार मात्र के लिए ही है। वस्तुतः ज्ञान दृष्टि के अनुसार तो उसकी सत्ता है ही नहीं। वस्तुतः परमार्थिक दृष्टि से केवल ब्रह्म ही सत्य है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं ---

'नहिं ब्रह्माण्ड पिंड पुनि नाहीं, पंच तत्त भी नाहीं।
इला पिंगला सुषमन नांही, सुण कहां समाही'।।[178]

---

177. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर वाणी परिशिष्ट - पृ० -20
('हम ही आप कबीर कहावा, हम ही अपना आप लखावा।')

178. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 18

परमार्थिक एवं अविनाशी रूप में कुछ भी नहीं है। अविनाशी रूप में आत्मा ही सत्य है, जो स्वयं अपने आप में भूल जाता है वह स्वयं ही इस भूल-भुलैया में उलझ जाता है।[179]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि संत कबीर और गुरु रविदास जी दोनों ने सैद्धान्तिक रूप से भले ही संसार को मिथ्या स्वप्नवत और नश्वर कहा है, परन्तु व्यवहारिक रूप में उसे मनुष्य के लिए कर्मक्षेत्र माना है। यहां जीव अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं और परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं।

उन्होंने मन को अहंकार, कर्म, सुख, दुख, जीवन-मरण और मुक्ति सम्बन्धी विचारों को अपनी वाणी में व्याख्यायित किया है।

---

179. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 225 - 'आपण मांहि आप छिपाया।'

चतुर्थ अध्याय

गुरु रविदास और संत कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण

-0-0-0-0-0-

समाज का सम्बन्ध एक ओर तो राजनीति से होता है तो दूसरी ओर धर्म से। जब राजनीतिक परिस्थितियां अव्यवस्थित होती हैं तब समाज के आचरण और व्यवहार में भी उच्छृंखलता आ जाती है। मुसलमानों के भारत में बस जाने पर हिन्दुओं में हीनता और निराशा की मनोवृत्ति ने घर कर लिया था। गुरु रविदास जी के आविर्भाव काल तक तो हिन्दुओं के हृदयों से स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा की भावना का प्राय: लोप हो चुका था। भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भागों में विभक्त था। इसीलिए संत कबीर, गुरु नानक, गुरु रविदास, दादू आदि संतों ने निर्गुण, निराकार प्रभु की भक्ति के गीत गाकर हिन्दू मुसलमानों के हृदयों को मिलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

वर्णाश्रम व्यवस्था का विद्रोह -

कर्मणा पर आधारित वैदिककाल की वर्णाश्रम व्यवस्था[180] अब जन्मणा में परिवर्तित हो गयी, जिसके फलस्वरूप जातियों में उपजातियों का जन्म हुआ। एक जाति दूसरी जाति की परस्पर पूरक न बनकर प्रतिस्पर्धी बन बैठी। तथाकथित धर्मवीर पुरोहितों ने जाति बन्धन के शिकंजे को इतना कस डाला कि हिन्दू धर्म का लचकीलापन जाता रहा। कच्छप-प्रवृत्ति की भांति बाह्य प्रसरणशीलता खोकर अपने आप में संकुचित होती चली गयी। समाज में ऊंच-नीच की खाई और भी गहरी होती

---

180. डा० राधाकमल मुकर्जी - प्राचीन भारत, पृष्ठ - 26

चली गयी । समाज में छुआ-छूत की भावना बढ़ गयी थी । यह जाति-व्यवस्था उन लोगों के लिए और भी अधिक दुःखदायी थी जो निचले स्तर के थे । शूद्रों को नीचतम वर्ण समझा जाता था । उच्च वर्ग वालों ने उन्हें सारे अधिकारों से वंचित कर रखा था । वेदों और शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए त्याज्य था । वे मन्दिरों में देवताओं के दर्शन भी न कर सकते थे । उनके लिए मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध था । उनका स्पर्श तक अस्पृश्य और अपवित्र समझा जाता था । इसलिए साधु-सन्त इस जाति व्यवस्था का सबल-विरोध करने लगे थे । शूद्रों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । नेक कार्य करके भी वे उच्च नहीं माने जाते थे । इस प्रकार जाति-व्यवस्था नीची जाति के लिए तो सामाजिक दासता थी । इन लोगों का समय उच्च वर्ग के विलासी लोगों की सेवा करने में व्यतीत होता था । उच्च वर्ग वाले अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस अव्यवस्था को बनाये रखना चाहते थे । इस वर्ग का घोर शोषण हो रहा था तथा ये लोग समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते थे । जातिगत अभिमान अधिक बढ़ गया था । संत गुरु रविदास जी और संत कबीर को इन्हीं परिस्थितियों से जूझना पड़ा था । चूंकि ब्राह्मण शूद्रों की छाया-स्पर्श से भी बचते थे इस कारण ब्राह्मणों के प्रति शूद्रों का क्षोभ और असंतोष बढ़ गया था । ब्राह्मण व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह में सबसे बड़े नेता संत कबीर हैं । भारतीय धार्मिक परम्परा में भक्ति बड़ी ही क्रान्तिकारी उद्भावना है और यह उद्भावना ब्राह्मण व्यवस्था के विरोध में है ।

संत कबीर और गुरु रविदास मानव-समाज की मौलिक एकता में विश्वास करते हैं । परन्तु दुर्भाग्यवश इनका जन्म उस युग में हुआ था । जब वर्णभेद और वर्गभेद के चलते समाज की एकता छिन्न-भिन्न हो रही थी । कबीर जैसे क्रांतिकारी व्यक्तित्व से हिन्दू समाज का यह अनर्थ देखा नहीं गया और उन्होंने कहा --

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान ।'[181]

उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त ऊंच-नीच और छुवा-छूत की भावनाओं पर तीखा प्रहार किया ---

'जे तू ब्राम्हन बाम्हनी जाया, और राह ते क्यूं नहीं आया'[182]

संत कबीर का विश्वास है कि सभी मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही जगत्पिता से हुई है और इसीलिए मनुष्य-मनुष्य की समानता स्वयं सिद्ध है । उनका कथन है कि जब निखिल विश्व एक ही पानी, एक ही पवन तथा एक ही ज्योति से निर्मित है, जब सभी पात्र एक ही मिट्टी के बने हैं और उनका सृष्टिकर्ता भी एक ही है, तब किसी प्रकार का भेद भाव व्यर्थ है ।[183]

इस युग से धर्म राजनीति से प्रेरित होकर हिन्दू मुसलमान के बीच भेद एवं मनोमालिन्य का कारण बन गया था । संत कबीर ने कहा कि यह तुर्क और हिन्दू का भेद-भाव नितान्त कृत्रिम है ।[184] जब हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं, एक ही कर्ता ने उसका सृजन किया है, तो यह सब भेद-भाव कैसा । राम, रहीम, केशव, करीम आदि नाम एक ही सत्य के हैं । गुरु रविदास जी की भी धारणा है कि जब तक कृष्ण और करीम, कुरान और पुराण को एक ही रूप में नहीं समझा जायेगा, तब तक सारी पूजा और साधना मिथ्या सिद्ध होती रहेगी ।

---

181. कबीर ग्रन्थावली , सं0 - श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ - 142, साखी- 42
182. संत कबीर - राग गउड़ी , पद - 7
183. संत कबीर - राग भैरउ, पद - 81
184. कबीर ग्रन्थावली , पद - 57, कहै कबीर एक राम जपउ हिन्दू तरक न कोई

कृष्ण करीम राम हरि लाखा, जब लग एक न पेखा ।
वेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहीं देखा ।।
जोइ-जोई पूजिए, सोई-सोई कांची, सहज भाव सत होई ।
कहै 'रैदास' मैं ताहि पूजूं जाके छांव नांव नहिं कोई'।।[185]

जातीय भेदभाव के विरोध में अपनी दृढ़ भावना व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि जीवन में सारवस्तु राम की भक्ति है, न कि जाति । कोई व्यक्ति जाति के कारण कभी ऊंचा स्थान नहीं प्राप्त कर सकता । जिसके हृदय में भक्ति भावना का उदय नहीं हुआ वह उच्च जाति का होते हुए भी अत्यन्त निन्दनीय बन जाता है । परन्तु निम्न कुल का भी भगवान की स्तुति करता है तो वह ईश्वर का प्रिय भक्त बन जाता है ।

तत्कालीन परिस्थितियों का बल एकत्र कर युग-धर्म की पहचान कर एक निर्भीक मत की स्थापना की जिसमें ब्रह्म की एकता और समत्व सिद्धान्त की भावना सर्वोपरि रही । जीव मात्र में उसी एक ब्रह्म की ज्योति है, इसीलिए किसी भी क्षेत्र में ऊंच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिए । वे कहते हैं ---

'शरीर सरोवर भीतर, ताहे कमल अनूप ।
परम ज्योति पुरुषोत्तम, जाके रेख न रूप ।।'

संत कबीर जाति की समानता की प्रबल भावना को लेकर जनता के सन्मुख आये और जनता को सच्चा मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया । साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से वंचित रहती थी । धर्म के ठेकेदार उस साहित्य की मनमानी व्याख्या कर उसे विद्वेषी बनाते और भटकाते रहते थे । इसीलिए संत कबीर ने धार्मिक सिद्धान्तों को जनता की बोली

---

185. संत रविदास और उनका काव्य , पद -५

में ही उसके पास पहुंचाया। संत कबीर समाज-सुधारक के साथ-साथ साधक भी थे। उनमें लोक-कल्याण अपने आप समाविष्ट रहता था। उनकी साधना मन के साथ-साथ आचरण से भी सम्बन्ध रखने वाली थी। यही कारण है कि संत कबीर की साधना व्यक्तिगत से तो प्रारम्भ हुई किन्तु वह व्यक्ति में आबद्ध होकर नहीं रह गई। उन्होंने मन की शुद्धि और साधु-संगत पर बल दिया ---

`मथुरा जावै, द्वारिका जावै, भावै जावै जगन्नाथ।
साधु संगति हरि भगति बिना, कछु न आवै हाथ।।`

संत कबीर के समय हिन्दू और मुसलमान दो ही धर्म प्रधान थे। परन्तु धर्म में और समाज में बाह्याडम्बरों की बाढ़-सी आ गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग आचारों और विचारों के माया जाल में ही फंस कर रह गए और वास्तविक धर्म का लोप हो गया था।...

`जप-तप संजम पूजा अरचा, जोतिष जग बौराना।
कागद लिखि-लिखि जगत भुलाना, मन ही मन न समाना"।[186]
(क० ग्रं०)

हिन्दू समाज ही नहीं मुस्लिम भी पथ-भ्रष्ट हो गये थे। उनके विषय में संत कबीर कहते हैं ---

`एक न भूला, दोई न भूला, भूला सब संसार।`

समाज में ऊंच-नीच के नाम पर जो आडम्बर फैले थे उनका संत कबीर ने डटकर मुकाबला किया। उन्होंने जाति-प्रथा की तीव्रालोचना की। इस तीव्रालोचना में उन्होंने किसी को भी नहीं छोड़ा। जाति के नाम पर

---

186. कबीर ग्रन्थावली, पद - 54

ऊंच-नीच की कटुता से ऊपर उठने का वे प्रयत्न करते हैं। वे समस्त विश्व को एक आध्यात्मिक बंधुत्व में बंधा देखते हैं। धर्म की आड़ लेकर ब्राह्मणों ने समाज में अपनी स्थिति को सर्वोपरि बनाया। उन्हें फटकारते हुए उन्होंने कहा ---

"हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।।"[187]

उन्होंने सभी धर्मों के अंधविश्वासों, पाखंडों और वाह्याडम्बरों का डटकर विरोध किया। उन्होंने पंडितों के तपस्या, तीर्थ, व्रत, षट्कर्म आदि कर्मकाण्डों को व्यर्थ बताया है ---

"तीरथ व्रत सब बेलड़ी, सब जग मिल्या छाय"।[188]

संत कबीर ने जहां एक ओर हिन्दू वहीं दूसरी ओर मुसलमानों की सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का भी विरोध किया है। दोनों मतों के दोष प्रकट करने में संत कबीर ने पूर्ण निष्पक्षता से काम लिया है। संत कबीर समाज को नहीं चाहते थे कि वह अन्धानुकरण करे। पत्थर -पूजा आदि के खोखलेपन को उन्होंने भली-भांति देखा। वे नहीं चाहते थे कि लोग धोखे में पड़े रहें --

"पाहन कूं का पूजिए, जे जनम न देई जाव।
आधा नर आसापुषी, यों ही खोवे आव"।।[189]

---

187. कबीर ग्रन्थावली, पद -55
188. -- वही -- , पद - 56
189. -- वही -- सं० - माता प्रसाद गुप्त - 42, पृष्ठ - 205

तथा

'पाथर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार ।।'[190]

दूसरी ओर मुसलमानों पर भी व्यंग्य किया है --

'कंकड़ पत्थर जोरिके, मसजिद लई बनाय ।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।'[191]

संत कबीर कहते हैं कि लोग माला फेरते हैं और अनाचार सोचते हैं और करते हैं । ऐसी माला किस काम की ? संत कबीर ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं --

'माला पहरे मन सुखी, तबै कछु न होय ।
मन माला को फेरता, जुग उजियारा होय ।।'[192]

या

'माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।'

एक ओर संत कबीर जहां हिन्दुओं को फटकारते हैं वहीं दूसरी ओर मुसलमानों की बंदगी को भी झूठा सिद्ध करते हैं --

'यह सब झूठी बंदगी बिरिथा पंच निवाज ।
सांचे मारे झूठि पढ़ि काजी करै अकाज ।।'[193]

---

190. कबीर ग्रन्थावली , सं0 - माताप्रसाद गुप्त - 2 , पृष्ठ -205
191. -- वही -- पृष्ठ 208
192. -- वही -- पृष्ठ 310
193. -- वही -- पृष्ठ 213

मूर्ति-पूजा और तीर्थ-व्रत आदि का कबीर के समय में बाधिक्य था। इनमें एक ओर भ्रम का आधार था तो दूसरी ओर भेद भाव का प्रचार --

'जप-तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसाम
सूबै सेबल सेविया, यो जग चाल्या निराश"।।[194]

संत कबीर और गुरु रविदास एक ही धारा से जुड़े हुए होने के बावजूद संत कबीर और गुरु रविदास दोनों के व्यक्तित्वों में अन्तर था। संत कबीर ने जहां खंडन-मंडन की प्रणाली का आश्रय ग्रहण किया, वहां गुरु रविदास जी ने बड़े विनम्र ढंग से अपना मत व्यक्त कर देना ही पर्याप्त समझा। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने सन्तों द्वारा निर्मित राज-पथ से भिन्न मार्ग ग्रहण किया था। गुरु रविदास जी की वाणी में मुख्यत: मानव जाति में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता की स्थापना और प्रत्येक मनुष्य को उचित सम्मान देने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हुई है। गुरु रविदास स्वयं एक ऐसे वर्ग से ऐसे समय में आये थे, जो रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में अनेक प्रकार के भेदभाव और दुर्व्यवहार झेल रहा था तथा मानवीय गौरव की उपलब्धि के लिए छटपटा रहा था।

"जाति ओछी पाती ओछी, ओछा जनम हमारा।
राजा राम की सेव न कीनी, कहि 'रविदास' चमारा"।[195]

चूंकि वह एक ऐसा युग था जिसमें धर्म मानव-जीवन के प्रत्येक अंग पर हावी था, इसीलिए स्वाभाविक रूप में मानवीय समानता की उनकी ललक भी धर्म की परिधि में ही प्रकट हुई थी। गुरु रविदास जी की

---

194. कबीर ग्रन्थावली, सं0 - माताप्रसाद गुप्त, 42, पृष्ठ 215
195. डा0 बी0 पी0 शर्मा, सन्त गुरु रविदास वाणी, पद - 45

वाणी में न केवल सामाजिक भेदभाव और छुआछूत से उत्पन्न होनेवाली मानसिक यंत्रणा का व्यक्तिकरण होता है। गुरु रविदास जी अपनी साखियों में बार-बार इस विषय पर लौटते हैं कि जाति-पांति कुछ नहीं है, सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं। वे इसे मानव जाति का रोग बताते हैं और कर्म को ही जाति का निर्धारक बताते हैं। उन्हें वे लोग निपट अज्ञानी प्रतीत होते हैं जो किसी व्यक्ति को निम्न जाति का समझते हुए उस पर अत्याचार करते हैं ---

समाज में समता के इसी उद्देश्य से ही प्रेरित होकर गुरु रविदास जी ने चार वर्णों की नये ढंग से परिभाषा की। उन्होंने स्पष्ट किया कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। जो व्यक्ति विषय-वासनाओं से दूर होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है वही ब्राह्मण है, जो दीन-दुखियों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर देता है वही क्षत्रिय है। जो नेक कमाई करता है वही वैश्य है तथा जो अत्यन्त पवित्र है, सेवा कार्य करता है और अंहकार से रहित है, वही सच्चा शूद्र है।

'ऊंचे कुल के कारणे, ब्राह्मण कोय न होय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, 'रविदास' कहि ब्रह्मन सोय ।।'[196]

गुरु रविदास जी ने भी साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए मुस्लिम-हिन्दू एकता पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में मन्दिर-मस्जिद एक हैं, राम-रहीम भी भिन्न नहीं, काबा-काशी में उन्हें

---

196. सं० पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, साखी -144 , पृ० -179

कोई अन्तर दिखाई नहीं देता । उन्हें यह सोच कर आश्चर्य होता है कि जब हिन्दू और मुसलमान दोनों के हाथ-पांव, नाक-कान एक जैसे हैं, तब उन्हें भिन्न कैसे समझा जा सकता है । वास्तव में हिन्दू मुस्लिम का सम्बन्ध तो कनक-कंगन जैसा है --

1. 'मन्दिर मसजिद दोउ एक है, इन मंह अन्तर नांहि ।
रविदास राम रहमान का झगड़उ कोउ नांहि ।।'

2. 'रविदास कंगन अरु कनक मंहि जिमि कछु अन्तर नांहि ।
तैसेउ अन्तर नाहीं, हिन्दुअन तुरक मांहि ।।'[197]

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, जाति-पांति और वाह्याचार के विरोध की दृष्टि से देखा जाये तो गुरु रविदास जी भी अपने युग की सन्त-काव्य परम्परा का अंग ही प्रतीत होते हैं । इस अवस्था में उन्हें सगुणोपासक और विशिष्टा-द्वैतवादी ठहराने का प्रयत्न नहीं कर सकते । वे मूर्तिपूजा का बहिष्कार और साधना को अंगीकार करते हुए कहते हैं ---

'तोरौं न पाती पूजौं न देवा ;
सहज समाधि करौं हरि सेवा ।'[198]

गुरु रविदास जी की वाणी के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि चाहे उन्होंने संत कबीर जैसी उग्र खंडन-मंडनात्मक प्रणाली को न अपनाया हो किन्तु उन्होंने वाह्याचार, कर्मकाण्ड और पूजा-अर्चना के रूढ़ विधान को कभी महत्व नहीं दिया ---

---

197. सं० पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, साखी, पृष्ठ -15

198. सं० पृथ्वी सिंह आजाद, सन्त गुरु रविदास वाणी, पद -76, पृ०-15

'बाहर उदकि पषारिये, घट भीतरी विविध विकार।
सुध क्वन पर होइबो सुंवर विविध बिउहार ।।'[199]

तीर्थ व्रत आदि का विरोध और उसकी व्यर्थता गुरु रविदास जी भी व्यक्त करते हैं ---

'तीरथ बरत,न करौ अंदेसा, तुम्हरे चरन कंवल के भरोसा ।'[200]

जातीय भेदभाव के विरोध में अपनी दृढ़ भावना व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि जीवन में सारवस्तु राम की भक्ति है, न कि जाति। कोई व्यक्ति जाति के कारण ऊंचा स्थान नहीं प्राप्त कर सकता। जिसके हृदय में भक्ति भावना का उदय नहीं हुआ, वह उच्च जाति का होते हुए भी अत्यन्त निन्दनीय बन जाता है। परन्तु निम्नकुल का भी भगवान से सच्चा प्रेम करने वाला जीवमुक्त हो जाता है। गुरु रविदास जी कहते हैं कि जिस जाति में उनका उद्भव हुआ है वह ओछी जाति मानी जाती है और उनका परम्परागत पैतृक व्यवसाय भी ओछा समझा जाता है, परन्तु परमात्मा ने उन्हें ओछा नहीं समझा और उन्हें अत्यन्त उच्च स्थान पर पहुंचा दिया है ---

'जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीच ते प्रभु ऊंच कियो है, कह रैदास चमारा ।।'[201]

---

199. सं0 पृथ्वी सिंह आजाद, सन्त गुरु रविदास वाणी, पद-30 ,पृ0-151
200. -- वही --- -- वही --- ., पद - 64 , पृ0 -151
201. संत रविदास और उनका काव्य - पद - 87

संत कबीर ने वर्णाश्रम की धज्जियां उड़ती देखीं और उनके संघर्ष को भी देखा। उन्होंने ठीक ही समझा कि अनेक भ्रम-वीथियों में भटकने वाले लोगों को पथान्वेषक नहीं समझा और कहा जा सकता। वे अज्ञान से लिपटे, जकड़े हुए हैं, इसलिए उन्हें सत्पथ नहीं दिखाई पड़ता। उनका भ्रम भंजन करते हुए संत कबीर कहते हैं कि छूत तो मायाजन्य है, उसी के विध्वंस से छूत का विध्वंस हो जायेगा ---

'पंडित देखहु मनमंह जानी,
कहु धौं छूति कहा ते उपजी, तबहिं छूति तुम मानी।[202]

संत कबीर ने ब्राह्मण-क्षात्रिय आदि के आचरण में मन की शुद्धि के स्थान पर बाह्याचार का ही प्राधान्य देखा। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपने नित्य नैमित्तिक गर्व से ही विपूर्ण है और क्षात्रिय को अपने जुझारु होने का अभिमान है ---

'खत्री करै खत्रिया धरमौ, तिनकूं होय स्वाया करमौ।
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारे।।'[203]

गुरु रविदास जी ने वर्णाश्रम व्यवस्था को अस्वीकार किया और इसकी नींव पर बहुत शक्तिशाली ढंग से प्रहार किया। इनके जाति विधान के सन्दर्भ में विचार है ---

'ब्राह्मन वैस सूद अरु ख्यत्री।
डोम चंडार म्लेच्छ मन सोई।।
होइ पुनीत भगवंत भजन तै।
आपु तारि तारे कुल दोई।।'[204]

---

202. कबीर - बीजक, शब्द - 41
203. डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर: एक विवेचन, पृ० - 219
204. गुरु रविदास, के० एन० उपाध्याय, राधा स्वामी सत्संग, व्यास, 1982

इस प्रकार गुरु रविदास जी ने ब्राह्मण और शूद्र में ऊंच-नीच के भेद-भाव को मिटा कर रहने का उपदेश दिया है। उन्होंने कहा कि नीच से नीच डोम-चण्डाल भी प्रभु की उपासना कर सकते हैं। परमात्मा की उपासना केवल ब्राह्मणों की सम्पत्ति नहीं है। इन्होंने विशेष रूप से नीची जाति के लोगों में आत्मविश्वास के भावों को जगाया। इन्होंने अपने सम्बन्ध में भी कहा ---

"जाकी छोति जगत कउ लागै ता पर तुहीं ढरै।
नीचहु ऊंच करै मेरा गोविन्दु काहु ते न डरै"।।[205]

इस प्रकार उन्होंने वह कर्म कर दिखाया जो बड़े-बड़े योगी, साधु भी अपने जप-तप के माध्यम से न कर सके। वस्तुतः भारतीय समाज में विचारों को ऊंच-नीच की बेड़ी से मुक्त करने का श्रेय संत कबीर और गुरु रविदास जैसे महान संतों को ही है। उन्होंने जिस समाज का निर्माण किया था उसमें ऊंच-नीच की भावना को कोई महत्व नहीं दिया गया। विभिन्न धर्मों के विभिन्न वर्गों को एक समान महत्व प्रदान किया गया। इन्होंने नागरिकों में नैतिक गुणों की प्रतिष्ठा की और समाज को सुन्दर एवं समृद्ध बनाया। इनके द्वारा निर्मित, कल्पित समाज में सदैव सुख और खुशहाली विद्यमान थी। बेगमपुरा के द्वारा वे अपने समाज का चित्रण करते हैं ---

"बेगमपुरा सहर को नाउं। दुख अंदोहु नहीं तिहि ठांउ।।
ना तसवीस खिराजु न मालु। खउफु न खता न तरसु जवालु"।[206]

---

205. डा० शिव कुमार शांडिल्य, महामानव रैदास, पृष्ठ - 66

206. --- वही --- -- --- वही --, पृष्ठ - 66

निष्कर्षतः स्पष्ट है कि इन संतों ने सामाजिक जीवन में साम्यता व स्वतन्त्रता को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया। उन्होंने अपने समाज को दुख, चिंता, भय से मुक्त बनाने का प्रयास किया। वे अपने युग के महान समाज सुधारक थे।

वाह्याचारों का विरोध --

गुरु रविदास जी और संत कबीर ने वाह्याचारों का विरोध अपने-अपने ढंग से सशक्त रूप भी दिया। ईश्वर की भक्ति के लिए किसी भी बाहरी दिखावे या प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं समझी। ईश्वर प्राप्ति के लिए नाचना-गाना, तप करना, चरण धोना, मूंड-मुंडाना, तीर्थ, व्रत रखना सब व्यर्थ है। वे तो प्रभु के सहज रूप की ही मन में आराधना करते हैं। गुरु रविदास जी ने यह कह कर -- तीरथ बीरथ न करो, थोथा पण्डित थोथी बानी। वाह्याचारों की निस्सारता को प्रकट किया है। अन्तर में यदि पाप वृत्तियां सजग हैं तो स्नान करने से शुद्धता कैसे आ सकती है। भावों की अनुभूति को वे अनपेक्षित समझते हैं --

'पढ़े गुने कछु समुझि न परई, जौलौं भाव न दरसै।
लौंस हिरण हौई धौ कैसे, जो पारस नहिं परसै।।'

पूजा के आडम्बर पर कबीर खीजते हुए अपनी विकलता व्यक्त करते हैं ---

"राम-राम भई विकल मति मेरी, कै यह दुनी दिवानी तेरी
वै पूजा हरि नाहीं भावै, सो पूजनहार चढ़ावै।।
जिहि पूजा हरि चल भाजै, सो पूजनहार न जानै"।।[207]

---

207. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, पद -275

जिस प्रकार कबीर ने पंडितों के 'आचार' की पोल खोली है, उसी प्रकार जोगियों के आचार की भी की थी।

संत कबीर के युग में जनता में सर्वाधिक प्रभाव हिन्दू मत या पौराणिक धर्म का था। इसके बाद जोगियों की प्रबलता थी। उस समय के जोगी अपनी जोग की करामातें दिखाने में जितने कुशल थे उतने ही 'मैदान' में आ कूदने में भी। संत कबीर हैरान थे और लोगों से कहा करते थे - यह भी अजब योग है कि महादेव के नाम पर पंथ चलाया जाता है। लोग बड़े-बड़े महन्त हो जाते हैं और हाट-बाट में समाधि लगाते फिरते हैं और मौका पाते ही रण-क्षेत्र में कूद पड़ते हैं। क्या दत्तात्रेय ने भी कभी फ़ौजों द्वारा शत्रुओं पर चढ़ाई की थी, शुकदेव ने भी कभी तोप-संग्रह किए थे, नारद ने भी कभी बन्दूक दागी थी। विचित्र हैं ये विरक्त जिनकी सोने की गद्दियां जगमगा रही हैं, हाथी घोड़ों के ठाठ लगे हैं, करोड़पतियों की सी शान है ---

"ऐसा जोग न देखा भाई। भूला फिरै लिए गफिलाई।।
महादेव को पंथ चलावै। ऐसो बड़ो महंत कहावै।।
हाट बाजार लावै तारी। कच्चे सिद्ध न माया प्यारी।।
कब दत्त मावासी तोरी। कब सुखदेव तोपची जोरी।।
नारद कब बन्दूक चलाया। व्यासदेव कब बंब बजाया।।
करहि लराई मति के मन्दा। ई अतीत की तरकस बन्दा।।
भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना परिहिल जावै बाना।।
थोरा-थोरी कीन्ह बटोरा। गांव पाय जस चले करोरा"।।[208]

---

208. कबीर बीजक रमैनी - 69, बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स।

दिखावटी जोगियों के आडम्बर से संत कबीर को अत्यन्त क्षोभ होता है। वे सत्य की निष्ठा की प्रतिष्ठा चाहते हैं। वेश से तत्व सिद्धि नहीं हो सकती। यदि परमात्मा फकीरों में मिलता है तो उसी में खोजना चाहिए। वे ऐसे वेश को सहर्ष स्वीकार करते हैं ---

"फाड़ि पुटौला धजि करौं, काम लड़ी पहराऊं।
जेहि-जेहि भेषां हरि मिले सोई-सोई भेष धराऊं"।। [209]

जो मुद्रा लगा कर लोगों को दिखाते हैं वे अवधूत नहीं हैं, केवल आडम्बर-भक्त हैं। जोगी तो जगत से भिन्न होता है --

"अवधू जोगी जग थैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न पंडै धारा"।। [210]

गुरु रविदास जी मात्र सिर मुंडा लेने और माला पहन कर दिखावा करने मात्र को भक्ति नहीं मानते। उनकी दृष्टि में रामनाम से प्रेम किए बिना जो कुछ किया जाता है, वह सब भ्रम है। वह भक्ति नहीं है ---

"ऐसी भांति न होई रे भाई।
राम नाम बिनु जो कुछ करिये, सो सब भरम कहाई।
भक्ति न मूंड मुंडाई, भक्ति न मान दिखाई।। [211]

लोग परमात्मा की खोज में देवालय जाते हैं परन्तु गुरु रविदास जी भगवत्प्राप्ति के लिए देवालय-दर्शन और पूजापाठ को मिथ्या बताते हैं --

---

209. कबीर-बीजक रमैनी - 70, बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स।
210. -- वही --- -- वही ---
211. संत रवि० और उनका काव्य, लखनऊ, नवभारत प्रेस, 1956, पद - 24

"थोथा पंडित थोथी वाणी, हरि बिन सबै कहानी ।
थोथा मंदिर भोग विलासा, थोथी बान देवकी वासा ।।"[212]

संत कबीर कहते हैं कि जो माला फेरते हैं और अनाचार सोचते और करते हैं ऐसी माला किस काम की । जिनका मन वासनाओं में घिर गया है उन्हें माला फेरने की कोई आवश्यकता नहीं है । संत कबीर माला जपने वालों के इस रूप को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ---

"माला पहरे मनमुखी, ताथैं कछु न होई
मन माला को फेरतां, जुग उजियारा सोई ।।"[213]

सन्यासी अपने केश मुंडाया करते हैं, किन्तु संत कबीर कहते हैं कि केशों को मूंडने से क्या लाभ ? विषय-विकार तो मन में ही रहे । इसलिए पहले मन को शुद्ध कर लेना चाहिए ---

"केसौं कहा बिगारिया, जे मूंडै सौ बार ।
मन को काहे न मूंडिये, जामैं विषय विकार ।।"[214]

संत कबीर मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे । उनका कहना है कि मूर्ति पूजा करने वाले निश्चय ही पाप की धारा में डूबते हैं । उस पत्थर को पूजने से क्या लाभ ? यह तो अज्ञानी मनुष्य है जो विभिन्न महत्वकांक्षाओं के वशीभूत हो पत्थर पूजता है वे कहते हैं यदि पत्थर पूजने से ईश्वर की प्राप्ति होती है तो मैं पहाड़ पूजने को तैयार हूं ---

---

212. संत रवि० और उनका काव्य, लखनऊ , नवभारत प्रेस, 1956, पद -55 ।

213. कबीर ग्रन्थावली , पद - 356 , पृष्ठ - 45

214. -- वही -- , साखी - 12 भेष को अंग ।

'पाथर पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहार ।
तातै यह चाकी भली पीस खाय संसार ।।[215]

गुरु रविदास जी ने भी मूर्ति पूजा का विरोध किया है । इनके अनुसार मूर्ति - पूजा से प्रभु की प्राप्ति असम्भव है ---

'पाती तोड़ै पूजि रचावै, तारन-तरन कहे रे
मूरत मांहि बसे परमेसर, तौ पानी मांहि तिरे रे ।।[216]

संत कबीर सत्य और अहिंसा के पुजारी थे और उनके समाज में असत्य और हिंसा का प्राबल्य था । लोक में भक्ष और अभक्ष्य की स्थिति भेद-दृष्टि से उत्पन्न होती है, इस दृष्टि को मिटाये बिना अहिंसा वृत्ति का उदय होना असंभव है । संत कबीर ने एक ओर बकरी की निरीहता और दूसरी ओर उसके खाने वालों की निर्दयता बड़े विस्मय और खेद से देखते हुए कहा --

'बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल
जो नर बकरी खात हैं उनको कौन हवाल ।।'[217]

संत कबीर धर्मों की तह में घुसे और जब उन्हें उनमें दूषित भाव मिले तो उन्हें निःसंकोच भाव से व्यक्त किया । संत कबीर ने मुल्ला की अजान और शेख की हज पर भी व्यंग्य किया । वे कहते हैं कि क्या वे नहीं जानते कि अल्लाह सर्वव्यापी है ----

---

215. कबीर ग्रन्थावली , पद - 16
216. संत रैदास , सं० योगेन्द्र सिंह , पृष्ठ - 180
217. कबीर ग्रन्थावली , पद -65

'कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुवा खुदाय ।।'[218]

तुम्हारा ऊंची आवाज़ में पुकारना व्यर्थ है क्योंकि वह तो यदि चींटी के पैर में घुंघरू बजे तब भी सुन लेता है ।

इस प्रकार संत कबीर और गुरु रविदास जी दोनों ने ही रूढ़ियों और अन्धमान्यताओं को छोड़ कर निष्काम कर्म को अधिक महत्व प्रदान किया । इनकी वाणी में तत्कालीन समाज का कितना तथ्य संचित है इसे इतिहास भी जानता है किन्तु ये वर्तमान युग को भी विकटता और सफाई से अभिव्यक्त करते हैं । इन्होंने किसी विशेष धर्म पर छींटाकशी नहीं की अपितु जो भी धर्म - रूढ़ियां उनके दृष्टिक्षेत्र में आयीं, उन पर विचार अपनी वाणी के माध्यम से प्रकट किए ।

साम्प्रदायिक भेदभाव सम्बन्धी विचार --

'सम्प्रदाय', 'पंथ', धर्म, शब्द भिन्न भावों के द्योतक होते हुए भी प्राय: एक दूसरे के पर्यायवाची समझे जाते हैं । किन्तु धर्म जहां एक प्रकार के व्यापक नियमों की प्रतीति कराता है, वहीं किसी धर्म में अनेक सम्प्रदायों और एक सम्प्रदाय में भी अनेक पंथों की अवधारणा की सम्भावना रहती है । वस्तुत: सम्प्रदाय और पंथ दोनों के अस्तित्व का मूलाधार धर्म ही है ।

किसी[219] पंथ अथवा सम्प्रदाय के प्रवर्तन के पीछे उसके मूल प्रवर्तक की स्वाभिक प्रबल धारणा अपने मत को लोकप्रियता के शिखर तक पहुंचाने की होती है । वह अपने समक्ष ही एक उत्तराधिकारी को भी नियुक्त करना चाहता है जो उसके अनन्तर उसके सिद्धान्तों का प्रचार कर सके ।

---

218. कबीर ग्रन्थावली , पद - 70

219. परशुराम चतुर्वेदी - उत्तरी भारत की संत परम्परा

किन्तु न तो संत कबीर में और न ही गुरु रविदास जी में इस प्रकार की किसी संगठनात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। यद्यपि दोनों के ही नाम पर प्रवर्तित 'कबीर - पंथ' और 'रैदास पंथ' का व्यापक प्रचार देश-विदेश में देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पंथों के निर्माण एवं संगठन में इन संतों का कुछ न कुछ हाथ रहा होगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें सम्प्रदाय-विशेष के गठन की धारणा नहीं थी।

संत कबीर की समग्र वाणी से यह पता चलता है कि वे क्रान्तिकारी पुरुष थे और उन्होंने तत्कालीन विभिन्न पंथों एवं उनमें व्याप्त मिथ्याचारों पर तीखा व्यंग्य और प्रहार किया। फिर वे किस प्रकार अपने शिष्यों को अपनी ही विचारधारा के प्रतिकूल आचरण की आज्ञा देते। इसी प्रकार गुरु रविदास जी भी आजीवन साम्प्रदायिक वेशभूषा एवं उपासनात्मक विडम्बनाओं से विरत रहें और एक निस्पृह गृहस्थ का जीवन-यापन करते रहें। वे सहज साधना में मनोयोगपूर्वक रत रहे। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी। वे मानव को केवल मानव होने के नाते महान् समझते हैं। वहां मानमर्यादा, धन, दौलत, कुल, जाति आदि का कोई स्थान नहीं है। वे जाति - सम्प्रदायवाद के कट्टर विरोधी थे। उनका कथन है --

'जात पांत के फेर महि, उरझि रहइ सभ लोग।
मानुषता कूं खात हई, रविदास जात कर रोग॥'[220]

---

220. रविदास दर्शन, साखी - 121

वे मनुष्य मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे। जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। सम्प्रदाय प्रतिष्ठा के वे विरोधी थे।

इस प्रकार गुरु रविदास जी की उपलब्ध रचनाओं में कहीं भी ऐसा संकेत नहीं मिलता है जिससे यह कहा जाये कि उन्होंने सम्प्रदाय का सूत्रपात किया था। उनका तो विश्वास था कि धर्म की वास्तविक अनुभूति का होना मूलतः व्यक्तिगत चिंतन एवं विश्वास पर आधारित है। वे साम्प्रदायिक भेदभाव को मानव समाज के लिए अभिशाप मानते थे।

एकेश्वर पर बल --

संत कबीर और गुरु रविदास दोनों संतों ने एकेश्वर पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में भीतर और बाहर कुछ भी नहीं है। जो भीतर है वही बाहर है। घड़े के फूटने पर जल-जल में मिल जाता है। इसी प्रकार शरीर के भीतर भी आत्मा है, बाहर भी। वह सर्वव्यापक तत्व आत्मतत्व है। प्रत्येक घट में वही ईश्वर समाया हुआ है। सर्वत्र एक ही ईश्वर की परिव्याप्ति है ---

"तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
बारि फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं।।"[221]

जीव और ब्रह्म के बीच भी उन्होंने कोई भेद नहीं माना। गुरु रविदास जी ने दोनों को एक मानते हुए अद्वैतभाव स्थापित किया है। ब्रह्म और जीव में ऐसा ही भेद माना गया है जैसा कि सोने और

---

221. रविदास दर्शन, साखी - 112

इससे बने आभूषण में होता है, पानी और पानी में उठी लहर में होता है, सूत और उससे बने वस्त्रों में होता है। पत्थर तथा पत्थर से निर्मित मूर्ति में होता है।

"कनक कुटक सूत पट जुदा, रजु भुजंग भ्रम जैसा।
जल तरंग पाहन प्रतिभा ज्यूं, ब्रह्म जीव द्युति ऐसा।।"[222]

गुरु रविदास जी के अनुसार भ्रमवश आत्मा और ब्रह्म में द्वैत-भाव रहता है। जब तक अहं भाव बना रहता है यह द्वैत भाव भी बना रहता है। अहं भाव के नष्ट होने पर आत्मा और ब्रह्म में, जीव और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता क्योंकि ईश्वर तो एक है। जीव और ब्रह्म के बीच गुरु रविदास जी ने एकता स्थापित की है। ईश्वर को एक मानकर अनेक रूपों में उसकी उपासना की जाती है। गुरु रविदास जी ने समस्त धर्मों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयास किया है। उस परम सत्ता को अपनी इच्छानुसार अलग-अलग नामों से याद किया जाता है --

"राघौ क्रिस्न करीम हरि, राम रहीम खुदाय।
रविदास मोरे मन बसहिं, कहुं खोजन बन जाय।।"[223]

एक ही खुदा के अनेक नाम हैं इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं ---

"रविदास कोउ अल्लाह कहई, कोउ पुकारइ राम।
कैसउ क्रिस्न करीम सम, साधक मुकुंद नाम।।"[224]

---

222. सन्त गुरु रविदास वाणी - पद - 70
223. रविदास दर्शन - साखी - 20
224. -- वही -- - साखी - 61

अलख अलह खालिक खुदा, क्रिस्न करीम करतार ।
राम्ह नाउं अनेक हैं, कहै रविदास चमार ।।[225]

गुरु रविदास ने सभी धार्मिक किताबों को भी एक रूप में देखने की इच्छा व्यक्त की है --

वेद, कतेब, कुरान, पुरानन, सहज एक नहीं देखा ।

जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है । हम सब में है और सब हम में हैं । हम से अलग कुछ और नहीं है । इस एक की खोज संत कबीर अपनी गम्भीर वाणी द्वारा करते हैं ।

गुरु रविदास जी ने अपने उपास्य देव का नाम एक राम कहा है । परन्तु वे यह भी कहते हैं कि मेरा 'राम' दशरथ-सुत राम नहीं है वह तो सर्वव्यापक है । वह मेरे अन्दर भी निवास करता है और वही इस विश्व-कुटुंब में बसता है । लोग उसे अपनी सुख-सुविधा के अनुसार अपने अपने विश्वास के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारते हैं । गुरु रविदास जी ने भी उन नामों को स्वीकार किया है ---

'जयो राम गोविन्द बीठल बासदेव,
हरि क्रिस्न बैकुंठ, केट भारी ।
क्रिस्न केसौ रिखीकेस वंसलाकंत,
अहो भगवंत त्रिविध संताप - ताप हारी ।।[226]

गुरु रविदास जी ब्रह्म के एक रूप को स्वीकार करते हैं।वह एक है, किन्तु एक ही अनेक रूपों में विस्तार पा रहा है । इसलिए वह अनंत है --

---

225. रविदास दर्शन - साखी - 62

226. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद - रविदास दर्शन , पृष्ठ - 79

एक ही अनेक होई बिस्तारिओ,
आन रे आन भरपूरि सोई ।।"[227]

जो सदा एक रूप रहता है वह सत्य है । उसमें न हानि होती है न वृद्धि होती है । वह सर्वत्र ओत-प्रोत है । उसका न कोई रूप है न कोई रंग है, वह अजर-अमर है । अनेक नाम रूप वाले आभूषणों का कारण भूत स्वर्ण सदा एक रूप है । आभूषणों के नाम-रूप बनने-बिगड़ने वाले हैं । अतएव नामरूपात्मक आभूषण सत्य नहीं है । किन्तु उनका कारणभूत कंचन सत्य है, जिसको पाकर कुण्डल, कंगन, आदि नामवाले आभूषण रूपवान होते हैं । जल से ही हिम बनता है और वही सूर्य के ताप से गल कर जल हो जाता है । ----

"देखण के सब को भले, जिसे सीत के कोट ।
रवि के उदै न दीसहीं, बंधे न जल की पोट ।।"[228]

इससे संत कबीर और गुरु रविदास इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह नामरूपात्मक जगत् " एक ब्रह्म " के आश्रय से भासित होता है और उसी में लीन हो जाता है । ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए अनेक दृष्टान्त देते हुए एक ब्रह्म की सत्ता सिद्ध करते हैं ।

समतावाद --

संत गुरु रविदास जी और संत कबीर की वाणी का मुख्य तत्व भले ही आध्यात्मिक और धार्मिक है, परन्तु इनमें समतावाद मानवतावाद जैसे आदर्शों का वर्णन बहुतायत से हुआ है । इनकी वाणी में एक नए

---

227. आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद - रविदास - दर्शन , पृष्ठ - 79
228. -- वही -- वही --- पृष्ठ -80

समाज के निर्माण का संकेत मिलता है, जिसमें समानता की भावना को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। अद्वैतवाद के प्रतिपादक संत कबीर पहले साम्यवादी थे, बाद में कुछ और। वे समाज की एकता के पुजारी थे और अखंडता के सच्चे प्रहरी।

गुरु रविदास जी ने युगीन परिवेश की आवश्यकतानुसार अपने सामाजिक चिन्तन का निर्माण किया। इनकी विचारधारा में भारतीय समाज की जड़-आस्थाओं की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया। इन्होंने भारतीय समाज को मानवता की आधार भूमि पर निर्मित किया था। यही कारण है कि उनके द्वारा संकल्पित समाज में सजीवता और चेतनता के दर्शन होते हैं।

इसमें [229] सन्देह नहीं कि सामाजिक उपद्रवों के कारण मूल सिद्धान्त बनते हैं। भिन्न-भिन्न सिद्धान्त समाज में जब आदर्श रूप प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो उनसे समतावाद की कमर टूटे बिना नहीं रह सकती। वही सिद्धान्त जब कुछ और उग्र हो जाते हैं तो समाज क्षय-ग्रस्त हो जाता है। संत कबीर ने पहले इसी का उपचार किया ---

'हम सब मांहि सकल हम मांही, हम थे और दूसरा नाहीं ।।'

इस प्रकार संत कबीर ने समतामूलक एकता का प्रतिपादन किया। एकतामूलक समता का प्रचार किया। यदि उन्हें हिन्दुओं के अनेकेश्वरवाद से सन्तोष न हो सका तो मुसलमानों के एकेश्वरवाद से मुक्ति न मिल सकी। क्योंकि अनेकेश्वरवाद से जिस प्रकार सामाजिक एकता सिद्ध नहीं होती उसी प्रकार एकेश्वरवाद से भी नहीं होती। इसलिए उन्होंने कहा ---

---

229. सरनाम सिंह शर्मा : कबीर एक विवेचन, पृष्ठ - 308

'मुसलमान कहे एक खुदाई, कबीर को स्वामी घटि-घटि
रह्यो समाई ।'

आज के राजनीतिशास्त्र में समाज का एक नियत अर्थ लगाया जाता है । आधुनिक मान्यता तो यह है कि साम्यवाद में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है, वर्गभेद के लिए कोई स्थान नहीं है । साम्यवादियों का यह विश्वास है कि संसार में सदा से दो वर्ग चले आ रहे हैं, एक शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग । एक श्रम करके भी अन्न, वस्त्र आवास के लिए संघर्ष करता है और दूसरा श्रम की दीनता, खरीदता ही नहीं अपितु उन्हें अपनी इच्छा का खिलौना भी बनाता रहा । इस प्रकार संत कबीर का साम्यवाद अभिव्यक्त सत्ता को पूर्ण प्रभुता प्रदान करता हुआ मानव-एकता सिद्ध करता है । अतः वह एकता या समता ब्रह्म के और जीव के अभेद तक आ पहुंचती है ।

संसार की नश्वरता, मानव शरीर की क्षण भंगुरता और आत्मा की अमरता एवं एकता दिखा कर संत कबीर समतल-भूमि पर निकट लाना चाहते हैं । राजमद को प्रकम्पित करते हुए कायाबल के अभिमान को गिराते हुए निर्बल को दृढ़ आश्वासन देते हुए और भक्ति के मार्ग का अनुसरण करते हैं । अभिव्यक्त सत्ता की शक्ति को मनुष्य के सामने ला कर संत कबीर मानवीय आशा-निराशा, गर्व-अभिमान आदि को चूर्ण करते हुए कहते हैं ---

'साईं सूं सब होत है, बंदे तैं कछु नाहिं ।
राई थैं पर्वत करै, पर्वत राई मांहि ।।'

इस प्रकार संत कबीर और गुरु रविदास जी साम्यवाद का समर्थन करते हुए कहते हैं कि परमात्मा एक अन्तिम और सर्वोच्च शक्ति है तथा वह सब में और सब उसमें हैं। राम और रहीम में कोई अन्तर नहीं है। वर्ण और वर्ग भेद कृत्रिम हैं, इन्हें मान्यता नहीं देनी चाहिए। मनुष्य-मनुष्य अभिन्न हैं। इन संत कवियों के साम्यवाद के सत्य एवं अहिंसा प्रमुखतत्त्व हैं और वह प्रेम की शिक्षा देता है।

नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण --

संत कबीर नारी के विरोधी नहीं थे किन्तु सिद्धों ने नारी को साधना का सहज अंश मान कर जिस आचार को जन्म दिया था, उससे संत कबीर को बड़ी घृणा थी। विद्वानों ने संत कबीर-वाणी में नारी-निन्दा का कारण निवृत्तिमूलक भावना को माना है और यह ठीक भी है कि संत कबीर की कृति में कनक और कामिनी साधना-पथ की सबसे बड़ी बाधा है, दुर्गम घाटियां हैं। जहां संत कबीर के सम्य के निर्बाध विलासों ने उनकी वैराग्य-भावना को दृढ़ किया, वहां उन्होंने नारी के रूप में नारकीय दृश्यों का भी अवलोकन किया। नारी का काममूलक रूप न केवल साधना का बाधक है, वरन् सामाजिक मर्यादाओं का भी प्रबल विघातक है। संत कबीर की समदृष्टि में नर-नारी में कोई भेद नहीं है। दोनों में अभिन्न रूप से परमाधिक सत्ता का ही आवास है --

"जैति औरति मरदां कहिये, सब में रूप तुम्हारा।"

इसके अतिरिक्त संत कबीर ने पतिव्रता की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। वह लौकिक दृष्टि से सामाजिक शील की प्रतिनिधि है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसका प्रेम जीवात्मा के उस प्रेम का प्रतीक है जो परम-प्रिय परमात्मा के सान्निध्य के लिए विरहाकुल रहती है।

संत कबीर ने सती नारी को 'संत' और 'सूरमा' की कोटि में रखा है ---

'संत सती और सूरमा, इन पटतर कोउ नांहि ।
काम पंथ को पग धरै, हिगे तो कहां समाहि ।।'[230]

पतिव्रता और सती नारी की उल्लसित प्रशंसा के कारण संत कबीर पर लाए गये नारी-निन्दा के आरोप का स्वत: ही परिहार आंशिक रूप से तो हो ही जाता है ---

गुरु रविदास जी ने भी कहीं-कहीं नारी सम्बन्धित विचार प्रकट किए तो हैं, परन्तु उनमें से अधिकतर उस समय की भोग-विलास प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कहे हैं । क्योंकि वैभव सम्पन्न व्यक्तियों के चरित्रहीनता तथा परस्त्रीगमन का प्राधान्य हो चला था । ---

पर नारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खांहि ।
दिवस चारी सरसा रहै, अति समूला जांहि ।।'[231]

संत कबीर और गुरु रविदास जी जैसे संतों से यह दुर्दशा और करुणा हृदय देखे नहीं गये । इसीलिए इनकी वाणी में विलासिता और उनके प्रेरक-तत्वों, कनक और कामिनी के विरुद्ध अत्यन्त तीखे एवं कटु प्रहार मिलते हैं ।

---

230. डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर : एक विवेचन, पृ० -228
231. रविदास दर्शन - , पृथ्वीसिंह आजाद , पृष्ठ - 75

कहना न होगा कि इनकी वाणी में नारी की दो रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। एक तो कामिनी के रूप में, जिसने सभी विषयियों को खा डाला है और दूसरे पतिव्रता एवं सती स्त्री के रूप में। इस रूप में वह महान गरिमामयी है। ये दोनों नारी के शाश्वत रूप हैं। यह ठीक है कि इन संत कवियों के युग में नारी को बहुत हेय और तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता था। संत कबीर ने नारी का जो चित्र खींचा है उसमें उज्ज्वल पक्ष का अभाव तो नहीं है, परन्तु फिर भी मलिन और हेय पक्ष अधिक उजागर हुआ है। नारी का सबल पक्ष भी उनके लक्ष्य में है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार संत कबीर और गुरु रविदास जी की सद्समाज - प्रियता उनकी विचारधारा में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित दिखाई पड़ती है। उन्होंने परम्परागत अन्ध विश्वासों, प्रथाओं एवं संस्थाओं का मूलोच्छेदन करके धर्म, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में बुद्धिवादी, साम्यवाद प्रतिष्ठित किया था। अपने लक्ष्य की पूर्ति उन्होंने, इसमें कोई संदेह नहीं कि बड़ी कुशलता से की है। यह कुशलता कहीं- कहीं अपने प्रतिरूप में दिखाई देती है। इनको देखकर ऐसा लगता है कि दोनों संत कवि कबीर और गुरु रविदास जी किसी प्रकार पक्षतापूर्ण दुर्भावना से प्रेरित नहीं थे। इसके मूल में उनकी अक्खड़ प्रकृति थी, पक्षतापूर्ण बहुत कम। इसी के आधार पर चल कर आज भी भारत का उद्धार हो सकता है।

पंचम अध्याय

संत कबीर और गुरु रविदास वाणी में काव्य-तत्व

-0-0-0-0-0-

जिस शब्द रचना में रसज्ञ व सहृदय भावकों को रस की अनुभूति हो उसी को काव्य कहा जाता है। परन्तु भावक को रसानुभूति काव्य के अर्थानुसंधान द्वारा ही होती है, अतः यह स्पष्ट है कि कवि में जिस प्रकार कारयित्री प्रतिभा के साथ श्रुत और अभ्यास का योग अपेक्षित है उसी प्रकार भावक में भी भावयित्री प्रतिभा के साथ अर्थानुसंधान की योग्यता का भी होना आवश्यक है। यही प्रतिभा और योग्यता भावक को काव्य के रसास्वाद का अधिकारी बनाती है।

यह सत्य है कि संत कबीर और गुरु रविदास जी की रचना में हमें वह साज-संवार, व्याकरण और वह संस्कार नहीं मिलता जो एक कलानिपुण कवि की रचनाओं में सामान्यतः पाया जाता है। छंदों की वैसी विविधता और अलंकारों की वह प्रचुरता उसमें नहीं पाई जाती। यह भी सत्य है कि एक चतुर कवि की भांति किसी अप्रिय सत्य को भी प्रिय बना कर ढंके-मुंदे रूप में कहने का ढंग संत कबीर ने नहीं सीखा था और न ही गुरु रविदास जी ने। संत कबीर और गुरु रविदास जी की कविता में काट-छांट और प्रदर्शन का प्रयत्न कदापि नहीं है, उसमें उच्च कोटि के काव्य का प्रभाव और आकर्षण विद्यमान है। उसमें साहित्य-शिक्षा और काव्य-कला की चतुराई प्रकट नहीं होती, परन्तु उसकी स्वाभाविक सरलता ही उसमें पवित्र तेज भर कर श्रेष्ट काव्यों की श्रेणि में उसे अचल आसन प्रदान करती है। संत कबीर और गुरु रविदास

ऐसे सन्त थे और ऐसे भक्त थे जो भक्ति की उस भूमिका पर पहुंच गए थे जहां अनायास ही उसका मेल दर्शन और कविता से हो जाता है। उस भूमिका पर दर्शन तर्कशास्त्र का और काव्य कविशिक्षा का आश्रित नहीं रहा करता। वहां रहती है शुद्ध अनुभूति की धारा, जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए शिक्षा और अभ्यास की अपेक्षा या प्रतीक्षा किए बिना ही, तत्क्षण उपलब्ध माध्यम द्वारा कला के रूप में फूट पड़ती है।

काव्य के अन्तर्गत भाषा, छंद, अलंकार, तथा दृश्य-श्रव्य, प्रबंध, मुक्तक आदि रूपों की विविधता एवं तद्गत गुण दोषों के ऊपर कविता का स्वरूप निर्भर नहीं है। शब्द रचना के विविध रूपों और आकारों में अभिव्यक्त होने वाली भावधारा ही कविता का प्राण है। यदि कवि में भावतन्मयता है और भावों को शब्द-रूप में इस प्रकार अभिव्यक्त करने की शक्ति है, जिससे भावक भी उनके अर्थों की भावना द्वारा उन्हीं भावों में तन्मय हो सके, तो यही कवि की सफलता है। फिर चाहे कविता का विषय, वाह्यरूप, भाषा आदि जो कुछ भी हो। इन संत कवियों को अपने क्षेत्र में यह सफलता पूरी-पूरी मिली है।

गुरु रविदास जी और संत कबीर-वाणी का मुख्य वर्ण्य विषय है - आध्यात्म, धर्म और भक्तिभाव, जिनके माध्यम से इनकी वाणी में सार्वभौमिक, सर्वकालिक धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। ब्रह्म के सगुण-निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त, एक-अनेक आदि नाना रूपों का वर्णन हुआ है। उस समय में प्रचलित समस्त साधनाओं का विश्लेषण

करके अष्टांग साधना का विशेष वर्णन किया गया है। गुरु रविदास वाणी का वर्ण्य विषय विशद एवं उदात्त है और उसमें समता की भावना के भी दर्शन होते हैं। गुरु रविदास जी के हृदय की जो प्रेमानुभूति उनकी वाणी में उतरी वह पाठकों को बरबस मोहित कर लेती है --

1. 'तू दाना साईं साहिब मेरा
खिजमतगार बन्दा मैं तेरा।
कहि रविदास अन्देसा यै ही,
बिन दरस क्यों जिवै हो सै ही ।।'[232]

2. 'तनु मनु अरपउं पूज चरावउं
गुर परसादि निरंजन पावउं'।[233]

3. 'परीति सुभामनि आव ।[234]
तेज सरूपी सकल सिरोमनि अकल निरंजन राव'।

इसी प्रकार रहस्यानुभूति इनके काव्य की भावपक्षीय सबल विशेषता है। गुरु रविदास जी के काव्य में परमतत्त्व के प्रति जिज्ञासा अथवा विस्मय भावना, परमात्मा की स्वहृदयानुभूत छवि का वर्णन, उसके साथ निजी सम्बन्धों की उद्भावना, परमात्मा से तादात्म्य आदि के वर्णन भी हैं ---

1. 'तेरा जन काहे को बोलै
बोलि-बोलि अपणी भगति क्यूं खोलै'।[235]

---

232. बी० पी० शर्मा, सन्त गुरु रविदास वाणी, पद - 82
233. -- वही --- -- वही -- , पद - 38
234. -- वही --- -- वही -- , पद - 98
235. -- वही --- -- वही -- , पद - 26

2. 'हम घर आयहु राम भरतार
गावहु सखि मिलि मंगलाचार,
तन मन रत करहिं आपुनो,
तौ कहु पाइहिं पिव पिवार।'[236]

3. सुरत शब्द जऊ एक हौं तऊ पाइहिं परम आनंद।
'रविदास' अन्तर दीपक जरई, घट उपजहिं, ब्रह्म अनंद।[237]

वस्तुतः जिस प्रकार गुरु रविदास जी की वाणी में विचारों का एक ऐसा अद्भुत सामन्जस्य है, जिसका आकलन परम्परागत दृष्टि से नहीं हो सकता, उसी प्रकार उनके साहित्य का कलात्मक मूल्यांकन भी परम्परागत दृष्टि से नहीं किया जा सकता। गुरु रविदास जी के काव्य में भक्ति भावना आद्योपांत पूर्ण आवेग में विद्यमान रही है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय परम्परा में वर्णित संचारी भावों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन हमें गुरु रविदास जी के काव्य में मिलता है। उनके काव्य में आये कतिपय विशेष संचारी, निर्वेद, मति, श्रुति विबोध आदि हैं, जिन्होंने स्थान-स्थान पर गुरु रविदास जी की भक्ति-भावना को पुष्ट किया है। इन सम्पूर्ण भावों के रहते हुए भी उनके काव्य में एक भाव समर्पण तथा शरणागति बार-बार उभरकर आई है --

1. 'मीन पकर काट्यो अरु काट्यो, रांधि कियो बहुतानी
खण्ड-खण्ड करि भोजन कीन्हे, तऊ न बिसरे बानि।'

---

236. वी० पी० शर्मा, सन्त गुरु रविदास वाणी - पद -168
237. -- वही -- , साखी - 77

2. "जऊ तुम गिरिवर तऊ हम मोरा, जऊ तुम चन्दन
हम भये चकोरा ।
... जऊ तुम दीवरा तऊ हम बाती, जऊ तुम तीरथ
तौ हम जाती।।"[238]

गुरु रविदास का काव्य आद्योपांत इस भक्ति-भावना और शरणागति से ओत-प्रोत है । भावना के क्षेत्र में उनके काव्य में एक विशेष रसमय वातावरण उपलब्ध होता है ।

गुरु रविदास जी के समय में पुरातनता, परिवर्तन के द्वार पर आकर खड़ी हो गई थी, नवीनता ने आकर द्वार खटखटा दिया था, नवीनता तथा पुरातनता के संयोग में देशाटन तथा भ्रमण से प्राप्त ज्ञान और भाषा तथा शब्दावली स्वत: ही सम्मिलित होने लगी थी । फलत: गुरु रविदास की भाषा तत्कालीन उत्तर भारत की सामान्य जनता के प्रति ग्राह्य भाषा बनकर राष्ट्रीय एकसूत्रता की भाषा बन गई थी । उनकी भाषा में विभिन्न प्रयोगों की प्रस्तुति हुई है । अवधी से प्रभावित प्रयोग --

"चमरटा गांठि न जनई, लोग गठावै पनही ।
नरहरि प्रकटसी नाही , प्रकटसि न हो ।।"[239]

ब्रज से प्रभावित -

" माटी का पुतरा कैसे नचतु है, देखे सुने दौरयो फिरतुहै ।
अब कछु पावत गर्व करतु है, माया-गई तौ रोवन लागतु है ।"[240]

---

238. बी० पी० शर्मा - सन्त गुरु रविदास वाणी, पद - 31
239. --- वही --- -- वही -- पद - 59
240. --- वही --- -- वही -- पद -87

उर्दू- फारसी मिश्रित प्रयोग -

"ना तसबीस बिराजु नमाल, खौफ न खता न तरस जवाल ।
खलिक सिकस्ता मैं तेरा, दे दीदार, उमेदगार, बेकरार
जिउ मेरा"।[241]

ये सन्त जनता के ही कवि थे, जनता से ही निकले थे और अधिकतम रूप में सामान्य जनता में ही रमे थे तथा सामान्य जनता के कल्याणार्थ ही उन्होंने विचार प्रकट किए । तीव्र वेग से उनको अपने विचारों का प्रसार करना था, अत: जहां उनकी भाषा में ग्रहणशील प्रवाहमान प्रयोग थे वहां उनकी शैली भी प्रसाद गुण सम्पन्न और मुख्यत: अभिधात्मक ही रही है । कहीं-कहीं जहां अनुभूति की अत्यन्त गहनता, सरल अभिधात्मक शैली में प्रकट नहीं हो सकी है, वहां अपने प्रबल भावावेग को प्रकट करने के लिए भले ही उन्होंने प्रतीकात्मक लाक्षणिक शैली ग्रहण कर ली हो या स्वत: हो गई हो और ऐसी अनुभूतियां प्रकट करने के लिए तो कहीं-कहीं सामान्य रूप से दीखने वाली विपर्ययात्मक शैली या उल्टबांसिया भी बन गई हैं, किन्तु सामान्यत: उनकी भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न अभिधात्मक ही रही है । गुरु रविदास जी की रचनाओं में कहीं-कहीं तो अभिधात्मक शैली भी अपने कसाव के कारण बड़ी सुन्दर लगती है । जैसे --

"हृदय सुमिरन करूं, नैन अवलोकन, श्रवणों हरि कथा पूरि राखौं
मनु सु मधुकर करूं, चरनन चित धरूं राम रसायन रसना चाखूं ।"[242]

---

241. बी० पी० शर्मा - सन्त गुरु रविदास वाणि - पद - 32
242. -- वही -- -- वही -- , पद - 38

प्रतीकात्मक लाक्षणिक शैली --

गुरु रविदास जी के काव्य में भावातिरेक की मात्रा अधिक थी अत: उनकी रचनाओं में उस अतिरेक को प्रकट करने के लिए प्रतीकात्मक लाक्षणिक शैली अनेक स्थलों पर सहायक सिद्ध हुई है और ऐसे स्थलों पर कहीं कहीं तो भाव को प्रकट करने के लिए गुरु रविदास प्रतीकात्मक बिम्बों की झड़ी लगा देते हैं ---

"प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राति ।
प्रभूजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा ।।"[243]

एक स्थल पर ब्रह्म की तुलना में जगत् की अस्थिरता एवं नश्वरता को गुरु रविदास ने सुंदर प्रतीकात्मक अभिव्यंजना दी है ---

"जैसा रंग कसूब का तैसा यहु संसार ।
रमैये रंग मजीठ का कह रैदास चमार ।।"[244]

कसूबा का हल्का रंग उसका पीलापन उसके रंग की जल्द उड़ जाने वाली प्रवृत्ति तथा उसकी तुलना में मजीठ के रंग का गहरापन, स्थायीपन, जगत् तथा ब्रह्म की पारस्परिक सापेक्षता देने के लिए बड़े सुन्दर प्रतीक चुने गए हैं, जिनसे उस सापेक्षता का भाव तुरन्त बिम्बायित हो जाता है ।

एक स्थल पर गुरु रविदास प्रभु से अपने प्रेम-बन्धन की दृढ़ता पर बल देने को व्यंजनात्मक उक्ति देते हैं ---

"जौ हम बांधे मोह फांस, हम प्रेम बंधनि तुम बांधे ।
अपने छूटन को जतन करौ हम छूटे तुम आराधे ।।"[245]

---

243. बी० पी० शर्मा - सन्त गुरु रविदास वाणी - पद -81
244. --- वही --- --- वही --- पद -108
245. --- वही --- --- वही --- पद -38

उपरोक्त अंश में शैली की दृष्टि से, समास प्रधान शैली का भी दर्शन हो सकता है, वैसे सामान्यत: गुरु रविदास जी के काव्य की शैली सामान्य जनता के लिए ग्राह्य थी और इसीलिए उसमें व्यास-प्रधानता ही प्रमुखत: पायी जाती है।

जहां तक सन्तों की वाणी में सज्जा तथा अलंकरण का प्रश्न है, यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उन्होंने उसको अलंकृत करने की किंचित मात्र भी चेष्टा नहीं की थी, किन्तु अभिव्यक्ति ने अपने को समर्थ बनाने के हेतु अब तक जितने भी प्रयोग किए हैं, बहुधा काव्यशास्त्र ने उनकी ही सुनियोजित व्याख्या करने की चेष्टा की है। अलंकार भी काव्य पर एक व्यर्थ का लदाव नहीं है, यह बात दूसरी है कि कोई कवि भाव को प्रमुख लक्ष्य न मानकर किसी अन्य उद्देश्य से अलंकार-विधान का ही प्रदर्शन करना चाहे। किन्तु अलंकारों से काव्य अधिक प्रभावशाली बनता है। इसीलिए उत्तम काव्य में अलंकार स्वत: ही आ जाते हैं। अस्तु गुरु रविदास जी के काव्य में बहुधा अलंकार स्वत: ही आ गये हैं जिन्होंने उनकी वाणी का सौन्दर्य और भी बढ़ा दिया है।

अपने सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए गुरु रविदास जी ने बड़ी सुन्दर उपमाओं तथा रूपकों से सहायता ली है। कुछ उपमायें तथा सांगरूपक तो साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त मनोरम हैं। ब्रह्म तथा जीव और संसार की भ्रमात्मक द्वैतता के भाव को अभिव्यक्त करने के लिए कई स्थानों पर गुरु रविदास जी ने सोना, अलंकार-सागर, लहर, सूत तथा वस्त्र की पृथकता की उपमा देकर भाव को स्पष्ट किया है --

"कनक कुण्डल सूत पट जुदा, रज्जु भुजंग भ्रम जैसा।
जल तरंग वाहन प्रतिम ज्यों, ब्रह्म जीव दुति ऐसा।।"[246]

---

246. रैदास जी की बानी - बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पद-83

एक ही ब्रह्म के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापक रूप से व्याप्त होने के लिए गुरु रविदास जी ने बहुत सुन्दर उपमा दी है कि जिस प्रकार एक छोटा-सा बट-बीज भावी विस्तृत बट-वृक्ष तथा अनेक बट-बीजों और वृक्षों की परम्परा के वृहत विस्तार का कारण है उसी प्रकार वह ब्रह्म भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का व्याप्त कारण है।

'बटक बीज जैसा आकार, पसर्‌यौ तीन लोक विस्तार।'[247]

रूपक सौन्दर्य तो गुरु रविदास जी के काव्य में अत्यन्त अनूठा है। विभिन्न स्थानों पर सुन्दर रूपकों से भाव को स्पष्ट करने में, काव्य में आकर्षक निखार आ गया है --

'जल की भीति, पवन का थम्बा, रक्त बूंद का गारा।
हाड़-मांस नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा॥'[248]

संसार - सागर में अपनी दुखपूर्ण ममता को गुरु रविदास जी ने एक अत्यन्त सुन्दर रूपक से अभिव्यक्ति दी है ---

गोविन्द भव जल व्याधि अपारा, तामे कछु सूझत वार न पारा।

'लोहे की नाव परवानन बोझी, सुकीरत भाव बिहीना।
लोभ तरंग मोह भयो काला, मीन भयो मन लीना॥'[249]

अपनी सहज भक्ति तथा निर्गुण में अपनी आस्था को एक व्यापारी के सांगरूपक से गुरु रविदास ने सुन्दर रूपक प्रकट किया है

---

247. रैदास जी की बानी - बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पद-64
248. --- वही --- --- वही --- पद - 40
249. --- वही --- --- वही ---- पद - 28

"हरि को टांडो खाय जाई रे।
हौं बनजारो राम को सहज करो व्यापार।
बोझट घाट घनो धन रे एक निगुण बैल हमार।
राम नाम धन लादियो तैं विष लादो संसार।।"[250]

इन सम्पूर्ण उपमा तथा रूपक अलंकारों से पुष्ट स्थलों पर गुरु रविदास जी ने इतने सुन्दर बिम्ब दिए हैं कि उनसे भाव का साधारणीकरण तुरन्त होता है। उनके पदों में बिम्ब सौन्दर्य का यह एक ऐसा ही उदाहरण है ---

"मैला-मैला कपड़ा बैता रे, एक धोऊं
बावे-बावे नींकड़ी रे, कहां लौ सोऊं
ज्यों-ज्यों जोडूं त्यों त्यों फाटे, सैल निज रे कुठि गयो हरि।"[251]

कतिपय शब्दालंकारों से गुरु रविदास की वाणि का श्रृंगार भरा हुवा है --

" ज्यों तुम कारन कैसवे लालच जिव लागा।
निकट नाथ प्रापत नहीं, मन मन्द अभागा।।"[252]

इसी प्रकार गुरु रविदास के काव्य में ऐसे अनेक स्थल उपलब्ध हो जाते हैं जिनमें अलंकारों का सौन्दर्य विद्यमान है किन्तु यह सभी अलंकार सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं और सभी वाणि की शक्ति को बढ़ाने में सहायक बनकर आये हैं, उनमें से कोई भी सायास प्रयोग नहीं लाते।

---

250. रैदास जी की बानी - बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, पद -108
251. --- वही --- --- वही --- पद - 23
252. --- वही --- --- वही --- पद - 45

इस प्रकार गुरु रविदास जी की वाणी में समता की भावना मिलती है जो मनुष्य-मनुष्य में एकता पैदा करने में पूर्णतः समर्थ है। वस्तुतः गुरु रविदास वाणी में तद्युगीन सभी संस्कृतियों के एकीकरण का उत्तम और उदात्त भाव मिलता है, जिसकी भारत को हमेशा आवश्यकता बनी रहेगी।

गुरु रविदास-वाणी के विशद और उदात्त वर्ण्य-विषय के अनुरूप ही उसका अभिव्यक्ति पक्ष भी उत्कृष्ट है। अभिव्यक्ति को सरल और सरस भाषा-शैली, अलंकार-बिम्ब, भक्ति रस से सुशोभित किया गया है। वाणी की संगीतात्मकता उत्कृष्ट कोटि की है। इसमें लय ताल राग आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। छन्दों का प्रयोग भी सुन्दर हुआ है। श्री वियोगी हरि गुरु रविदास वाणी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए ठीक ही लिखते हैं --

'महात्मा रैदास की बड़े ऊंचे घाट की बानी है। प्रेमपरा भक्ति का कई शब्दों में बड़ा ही विशद निरूपण उन्होंने किया है। समता और सदाचार पर बल बहुत दिया है। भक्ति रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने में आता है। खण्डन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही, अपरोक्षानुभूति ही उनका परम ध्येय था। भाषा ने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के शब्दों का उनकी बानी में समावेश हुआ है, फिर भी एक रस ही सर्वत्र प्रवाहित दीखता है।[253]

गुरु रविदास जी की वाणी का वर्ण्य विषय जहां विविध एवं विशद है, वहां उसकी अभिव्यक्ति भी सहज और उदात्त है। अतः संत-वाणी के सौष्ठव का विश्लेषण और सौष्ठव की आवश्यकता है।

---

253. संदिप्त संत सुधा सार - सं0 - वियोगी हरि, पृष्ठ -93-94

प्रेम साधना की अभिव्यक्ति -

गुरु रविदास जी की वाणी में इनकी आत्माभिव्यक्ति सर्वत्र परिलक्षित होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं -- 'आडम्बर सहज शैली और निरीह आत्मसमर्पण के क्षेत्र में गुरु रविदास के साथ कम सन्तों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुण हो तो निस्सन्देह गुरु रविदास जी के भजन इस गुण से समृद्ध हैं। सीधे-सादे पदों में संत कवि के हृदय-भाव बड़ी सफाई से प्रकट हुए हैं और वे अनायास सहृदय को प्रभावित करते हैं। उनका आत्म निवेदन, दैन्यभाव, और सहज भक्ति इसी श्रेणी के भाव पाठक के हृदय में संचारित करते हैं। इसी को काव्य में संप्रेषणीयता का गुण कहते हैं।'[254]

गुरु रविदास जी की सहज अभिव्यक्ति परमात्मा के प्रेम के अलौकिक आनन्द से सम्बन्धित है। उन्होंने भक्ति के आवेग में अभिव्यक्ति के लिए आकुलता अनुभव की और फिर उसी को वाणी में अभिव्यक कर दिया। भक्ति की भावना जब बहुत बढ़ जाती है तब साधक 'प्रेम-साधना' में लीन हो कर सर्वत्र अपने आराध्य की प्रेममयी सत्ता का दर्शन करता है। गुरु रविदास जी ऐसी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक करते हैं --

'सबै एकु अनेकै सुआमी सभ घट भोगवै सोई।
कहि रविदास हाथ पै तेरै सहजे होई सु होई।।'[255]

---

254. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, पृष्ठ - 139

255. आदि गुरु ग्रन्थ साहिब, रागु सोरठि, वाणी रविदास की पृष्ठ -658

गुरु रविदास जी परमात्मा को हृदय में धारण कर प्रेममयी भक्ति करने का उपदेश देते हैं --

"मैं हृदय हरि बैठ्यो हरि, मोपै सह्यो न एको काज ।
भाव भगति रैदास रै, प्रतिपाल करि मोहि आज ।।"[256]

गुरु रविदास जी की भक्ति में दास्य-भाव के साथ-साथ माधुर्य भाव के भी दर्शन होते हैं । गुरु रविदास जी ने निष्काम भक्ति को अपनाया है । इन्होंने भक्ति के महत्व को अनेक स्थलों पर प्रतिष्ठित किया है । उनकी भक्ति में नाम-स्मरण, कीर्तन, भक्त की दीनता, परमात्मा की महिमा आदि का वर्णन मिलता है । इन्होंने अनेक स्थलों पर परमात्मा भक्ति की याचना करते हुए प्रभु से दर्शन देने की प्रार्थना की है ----

"दरसन दीजै, राम दरसन दीजै ।
दरसन दीजै, बिलम्ब न कीजै ।।
दरसन तोरा जीवन मोरा ।
बिन दरसन क्यूं जीवै चकोरा ।।
माधौ सतगुरु सब जग चेला ।।"[257]

गुरु रविदास जी के हृदय में परमात्मा दर्शन की तीव्र अभिलाषा है , परन्तु जब परमात्मा उन्हें कुछ समय के लिए नहीं मिलता, तब वे वियोग में दुखी होकर तड़पने लगते हैं । परमात्मा के दर्शन न मिलते पर उनके हृदय की पीड़ा की अनुभूति बड़ी ही मार्मिक बन पड़ती है ---

---

256. सं० संगमलाल पाण्डेय ; संत रैदास , पृ०-144

257. संत वियोगी हरि - संदिप्त संत सुधा सार , पृ० - 98

"मैं वैदनि कासनि आखूं, हरि बिन जिव न रहै कस राखूं ।
जिव तरसै ज्यौं बासरु तेरा, करहु संभालसे सुर मुनि मेरा ।।
विरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ।
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली ।।
मैं रे दुहागिनी एक करि जानी, गया सो जीव साध न मानी ।।
तू साँई औ साहिब मेरा, खिजमतगार बन्दा मैं तेरा ।।
कहि रैदास अंदेसा ये ही, बिन दरसन क्यौं जिवहि सनेही"।।[258]

इस प्रेम भक्ति की प्राप्ति गुरु-कृपा, अष्टांग साधना तथा संतों की संगति से होती है । गुरु के द्वारा साधक को प्रभु मिलन का मार्ग प्राप्त होता है ---

"तन मन अरपहुं पूज चरावहुं ,
गुरु परसादि निरंजन पावहुं ।।[259]

गुरु रविदास जी ने प्रिय-मिलन की उत्सुकता और उससे पैदा होने वाले दुख का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है । प्रभु-मिलन की उत्सुकता आतुरता में कवि के हृदय से जो उद्गार प्रस्फुटित होते हैं वे ये हैं ---

"प्रीति सुधारन आव ।
तेज सरूपी सकल सिरोमनि, अकल निरंजन राव ।
पिउ संग प्रेम कबहुं नहिं पायौ, करनी कवन बिसारि ।
चक को ध्यान दधिसुत सो हेत है, यौं तुमसे मैं न्यारी ।

---

258. संत वियोगी हरि - संदिप्त संत सुधा सार , पृ0 - 96
259. --- वही ---- ---- वही ---- , पृ0 - 96

भवसागर मोहि इक टक जोवत तलफत रजनी जाई ।
पिय बिन सेजइ क्यों सुख सोऊं, बिरह बिथा तन खाई
मेटि दुहाग सुहागिन कीजे, अपने अंग लगाई ।
कह रैदास स्वामी क्यों बिछोहै एक पलक जुग जाई ।"[260]

इस प्रकार प्रियतम मिलन के चित्रों में संत-कवि के हृदय का उल्लास और स्पंदन परिलक्षित होता है । अन्त में, प्रिय मिलन के समय पूर्ण तादात्म्य की अभिव्यक्ति का चित्र इन पंक्तियों में मुखरित हो उठा है --

"सुख की सार सुहागिन जानै, तजि अभिमान रंग रलिया मानै ।
तन मन देह न अन्तर राखै , राम रसायन रसना चाखै ।"[261]

गुरु रविदास जी ने प्रभु मिलन के सुख को अवर्णनीय कहा है ---

"जब राम नाम कहि गावेगा । तब भेद अभेद सभावेगा ।
जै सुख है इहि रस के परसे । सो सुख का कहि गावेगा ।"[262]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रविदास-वाणी में प्रेम की पीर, अनन्यता, सरसता और एकान्तनिष्ठा के दर्शन होते हैं ।

रहस्यानुभूति --

'साधक' जब वैयक्तिक साधना के द्वारा मन को शुद्ध बनाते हुए भक्ति के निश्छल और आत्मोत्सर्ग के क्षेत्र में पहुंचता है, जब लगातार नाम स्मरण की भावना और विरहानुभूति के कारण मस्ती भरी तीव्रता आ जाती है । तब उसे परम-तत्व की अद्वैतानुभूति होने लगती है । इस

---

260. सं0 संगमलाल पाण्डेय, संत रैदास , पृष्ठ -169
261. सं0 योगेन्द्र सिंह , संत रैदास , पृष्ठ - 195
262. सं0 संगमलाल पाण्डेय, संत रैदास , पृष्ठ -170

तादात्म्य- भावना की अवस्था में वह इतनी तन्मयता के साथ अलौकिक आनन्द में डूब जाता है कि उसे बाहरी चेतना का आभास ही नहीं रह जाता। इस समय साधक अपने 'स्व' को समाप्त करके 'परम' की ओर बढ़ता हुआ इन्द्रियातीत अनुभूति को प्राप्त कर लेता है। इस अलौकिक अनुभूति के आनन्द को वह वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त करने में असमर्थ पाता है। वस्तुतः साधक के लिए परम-तत्व का प्रेम और उसकी अनुभूति गूंगे के गुड़ के समान है। इसे ही रहस्यवाद का मूल आधार माना जाता है।[263] गुरु रविदास जी कहते हैं कि उस परमात्मा के आनन्द को साधक उसी प्रकार नहीं बतला सकता जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति गुड़ के मीठे स्वाद को नहीं बतला पाता ---

"ऐसो ध्यान धरो बनवारी मन पावन दृढ़ सुषमन नारी।
उल्टी गंग जमुन में लाऊं, बिन ही जल मज्जन दे पाऊं।।
लोचन भरि-भरि बिम्ब निहारूं, जोति विचारन और विचारूं।।
पिंड परे जिव जस घर जाता, शब्द अतीत अनाहत राता।
जापै कृपा होई मल जाने, गूंगो सा गुर कहा बखाने।।[264]

गुरु रविदास जी स्वयं को उस परम तत्व के अनुभव को शब्दों में निरूपित करने में असमर्थ पाते हैं ---

'कहि रविदास अकथ कथा बहु काई करीजे
जैसा तू तैसा तुही किवा उपमा दीजे"।।[265]

इस प्रकार परम तत्व की रहस्यानुभूति में साधक प्रेम के वशीभूत होकर परम तत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ता हुआ अन्त में उसी में सम्पूर्णतः

---

263. डा० पदम गुरचरन सिंह, संत रविदास विचारक और कवि, पृष्ठ - 157

264. सं० योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, पृ० 149

265. गुरु ग्रन्थ साहिब, वाणी रविदास की : पृ० -858

समा जाता है। इसी विशिष्ट अनुभूति को साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद के नाम से विश्लेषित और विवेचित किया जाता है।

रहस्यवाद का सरल और सीधा अर्थ है वह वर्णन जो रहस्य से सम्बन्धित हो, जो रहस्य को अभिव्यक्त कर सके।

रहस्यवाद के स्वरूप की व्याख्या और परिभाषा अनेक विद्वान समालोचकों और उत्कृष्ट कवियों ने की है। इसमें डॉ० रामकुमार वर्मा जी की रहस्यवाद सम्बन्धी परिभाषा पूर्ण और स्पष्ट कही जा सकती है। डा० वर्मा के अनुसार - 'रहस्यवाद [266] जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाश है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चय सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियां इसी के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन से केवल उसी दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल-सी जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती रहती है। यह दिव्य संयोग है। आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन। इस संयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में ही अन्तर्हित कर देता है। उस प्रेम में चन्चलता नहीं रहती, अस्थिरता नहीं रहती, वह प्रेम अमर हो जाता है।

---

266. डा० रामकुमार वर्मा, कबीर का रहस्यवाद, पृ० - 7

इस प्रसिद्ध और पूर्ण परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रहस्यवाद का मूलाधार प्रेम है। इसमें विश्व-प्राणी परोक्ष-सत्ता के लिए अनुभव करता है। साधक के प्रेम की तन्मयता घनीभूत होकर अभिव्यक्ति में प्रस्फुटित होने का यत्न करती है। इस प्रकार आध्यात्मिक दिव्य अनुभूतियों की भावनात्मक अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है।

गुरु रविदास जी का साधक अपने साध्य को जानने की जिज्ञासा प्रकट करता है जब उन्हें उस अज्ञात सत्ता का कुछ अनुभव होने लगता है तब वह विस्मय से भरकर उसके महत्व की चर्चा करने लगता है। वह स्वानुभूति के अन्तर्मुखी आनन्द-विषयक अभिव्यक्ति में अपने को असमर्थ पाता है और कह उठता है --

"तेरा जन काहे को बोले।
बोलि-बोलि अपनी भगति को खोले।
बोलत-बोलत बढ़े बियाधी, बोल अबोले जाई,
बोले अबोल, अबोल कोप करे, बोल बोल को खाई।
बोले ज्ञान मान परि बोले, बोले वेद बड़ाई।
उर में धरि-धरि जब ही बोले तब ही मूल गंवाई।
बोलि-बोलि औरहि समझावे तब लगि समझ न भाई।
बोलि-बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई।
बोले गुरु अरु बोले चेला, बोल बोल की परतिति जाई।
कह रैदास मान भयो जबही, तबही परम निधि पाई।"[267]

गुरु अर्थात् उस परम तत्व को वाणी से प्रकट करना बहुत ही कठिन है। गुरु रविदास का साधक उसे अनुभूति की मग्नता में प्राप्त करता है।

---

267. सं० सामलाल पाण्डेय, संत रैदास, पृष्ठ - 152

गुरु रविदास जी ने प्रभु-प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति को दाम्पत्य रूपक द्वारा भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे अपने आध्यात्मिक प्रियतम के न मिलने पर विरह-जीवित दुख को व्यक्त करते हुए कहते हैं ---

"मैं बैदनि कासनि आखूं, हरिबिन जिव न रहै कस आखूं
विरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै।
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली।
तू सांई और साहब मेरा, खिजमतगार बंदा मैं तेरा।
कह रैदास अंदेसा ये ही, बिन दरस ज्यों जिवहि सनेही"।[268]

गुरु रविदास जी की आत्मा परमात्मा से तादात्म्य प्राप्त कर आह्लाद से पुलकित हो उठती है। इसी मिलन की अभिव्यक्ति करते हुए गा उठती है --

"गाइ-गाइ अब कहि गाऊं, गावनहार को निकट बताऊं।
जबलगि है इहितन की आसा तब लगि करै पुकारा।
जब मन मित्यो आस नहीं तन की, तब को गावनहारा।
जब लगि नदी न समुंद्र समावै, तब लगि बढ़ै हंकारा।
जब मन मित्यो राम सागर सौं, तब यह मिटि पुकारा"।[269]

अतः कहा जा सकता है कि गुरु रविदास जी की वाणी में साधनात्मक और भावनात्मक दोनों प्रकार के रहस्यवाद के उदाहरण मिल जाते हैं। इन दोनों में से भावनात्मक रहस्यवाद का प्राधान्य है। परन्तु इन दोनों में सन्त-कवि की निजी विचारप्रधानता सर्वत्र दिखायी देती है। इनके रहस्यवाद में प्राप्त अनुभूति की बहुत गहन और मार्मिक

---

268. सं0 सांमलाल पाण्डेय, संत रैदास, पृ0 - 152
269. सं0 वियोगी हरि, संक्षिप्त संत सुधा सार, पृ0 - 93

है। इनकी रहस्यानुभूति में एकान्तिकता न होकर प्रतत्यात्मकता की प्रतीति होती है। यह इसलिए है क्योंकि गुरु रविदास जी न केवल विचारक और सुधारक ही थे अपितु गृहस्थ भी थे। इन्होंने सन्यास-प्रवृत्ति का उपदेश नहीं दिया। इनके रहस्यवाद में प्रेम की छटा चारों तरफ दिखाई देती है। इस प्रेम तत्व ने इनके रहस्यवाद में एक अलौकिक आनन्दतत्व पैदा कर दिया है।

रस --

गुरु रविदास जी मौलिक विचारक और महान सुधारक होने के साथ-साथ भावुक भी थे। उनकी गहन अनुभूति अनेक स्थलों पर कविता में इस प्रकार प्रस्फुटित हुई है कि वहां भावों के उद्वेलन की आस्वाक्त: स्वाभाविक रूप में मिलती है। इनकी परमात्मा सम्बन्धी अनुभूति में सरसता की प्रतीति होती है। इस प्रकार गुरु रविदास जी की वाणी में रसात्मकता का गुण पूर्णरूपेण विद्यमान है।

गुरु रविदास जी की वाणी में प्रस्तुत रसों की परिकल्पना है --

1. शान्त रस - संसार मिथ्यामूलक, निर्वेद परक पदों में।
2. शान्त भक्ति रस - निर्वेद के प्रभु-रति समन्वित होने पर
3. मधुर भक्ति रस - माधुर्य मूलक कान्ता रति की संयोग परक अवस्था में
4. दास्य भक्ति रस - स्वयं को दीन-हीन कहने वाले पदों में
5. अद्भुत रस - दुरूह वस्तु - व्यंजनाओं द्वारा व्याहत।

शान्त रस -

शान्त रस का स्थायी भाव वैराग्य है। इसका आलम्बन अनित्य, नश्वर तथा असार संसार संचारी भाव उद्वेग, मति, स्मृति आदि होते हैं। गुरु रविदास जी की वाणी में इस रस की प्रधानता है --

" माटी को पुतरा कैसे नचतु है।
देखै-देखे सुने बोलै दउरिओ फिरतु है ।
जब कछु पावै तब गरबु करतु है।
माईआ गई तब रोवनु लागु है।
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना।
बिनसि गइआ जाइ कहुं समाना।
कहि रविदास बाजी जगु भाई।
बाजीगर सउ मोहु प्रीति बन आई।।"[270]

इस शब्द में संसार की नश्वरता संबंधी स्थायी भाव है। इसमें माया अहंकार आदि को त्याग कर प्रभु से प्रेम करने का उपदेश दिया है। शान्त भक्ति रस को अपनी वाणी में इस प्रकार पिरोया है --

"मृग मीन भृंग पतंग कुंचर एक दोख विनास।
पंच दोख असाध जामहि ता की केतक आस।।
माधो अविदिआ हित कीन, विवेक दीप मलीन।।
तृपद जोनि अचेत संभव पुनं पाप असोच।
मानुखा अवतार दुलभ तिही संगति पोच।।
जीअ जंत जहां जहां लगु करम के बसि जाइ।
काल फांस अबध लागै कछु न चलै उपाइ।।"

---

270. गुरु ग्रन्थ साहेब, वाणी रविदास की - पृष्ठ - 487

रविदास दास उदास तजु प्रभु तमन तपु गुर गिआन ।
भगत जन मै हरन परमानंद करहु निदान ।।"[271]

मधुर भक्ति रस -

गुरु रविदास वाणि मैं इस रस के कुछ उदाहरण मिलते हैं। संत कवि ने संयोग की अपेक्षा वियोगपरक मधुर भक्ति रस की अभिव्यक्ति अधिक की है। निम्नलिखित पद मैं मधुर भक्ति रस का वियोगपरक रूप बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

"जीव सं प्रेम कबहुं नहिं पायो, करनी क्वन बिसारी ।।
चक को ध्यान, दधि सुत सोज्यौं है त्यौं तुमते मैं न्यारी ।।
मोर भयो मोहि एक टक जोवत, तलफत रजनी जाई ।
पीव बिना सैज का सुख विरह विथा तन खाई ।।
मेटि दुहाग सुहागिनि कीजै, अपने अंग लाई ।
कहैं रैदास स्वामि तैं बिछुरे एक पलक जुग जाई ।।"[272]

मधुर भक्ति रस के संयोग पक्ष की उस अवस्था का चित्रण गुरु रविदास-वाणी मैं मिलता हैं जहां विरहिणी अपनत्व के पूर्ण विसर्जन द्वारा प्रियतम से पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करती है। ---

"सुख का सार सुहागिन जानै, तजि अभिमान रंगरलिया मानै ।
तन मन देइ न अन्तरु राखै, राम रसायन रसना चाखै ।।"[273]

अद्भुत रस -

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। जब किसी वस्तु के दर्शन से विस्मय सबसे अधिक प्रबल रहे और अन्य वृत्तियां अप्रधान हो जायें तभी अद्भुत रस की स्थिति होती है। अद्भुत रस का आलम्बन अलौकिक

---

271. गुरु ग्रन्थ साहेब, वाणी रविदास की - पृ० - 486
272. सं० योगेन्द्र सिंह, संत रैदास - पृ० - 177
273. --- वही --- --- वही --- ० - - ६

वस्तु होती है। इस विशिष्ट वस्तु के अवंभित करने वाले कार्य उद्दीपन होते हैं। रोमांच गद्-गदस्वर आदि अनुभव है। इसके संचारी भावों में मुख्य आवेग हर्ष आदि होते हैं ---

गुरु रविदास - वाणी में अद्भुत रस की अभिव्यंजना अधिक नहीं हुई है। परन्तु इसके कुछ उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं --

'काजीगर की बाजी कारन सबको कौतुक भावै।
जो देखै सो भूलि रहै, वाका चेला मरम न पावै।
खण्ड ब्रह्माण्ड लोक सब जीते, इहि विधि तेज जनावै।
सबही को चित चोर लियो है, वाके पीछे लगे जु ध्यावै।।[274]

इस प्रकार गुरु रविदास जी की वाणी का भाव-पक्ष प्रेम-भक्ति से ओत-प्रोत है। इन्होंने इसी भाव के आश्रय शांत रस, शांत भक्ति रस तथा माधुर भक्ति रस सम्बन्धी भाव अभिव्यक्त किये हैं। गुरु रविदास-वाणी का सीमित भाव-पक्ष भी अलौकिक अनुभूति से सम्बन्धित होने के कारण सुन्दर और महान है।

भाषा --

गुरु रविदास की भाषा भी समृद्ध और ओजपूर्ण है। इनकी वाणी में तत्कालीन समस्त बोलियों के शब्द न्यूनाधिक मात्रा में मिलते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने अरबी, फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी सुन्दर और सटीक रूप में किया है। इनकी काव्य भाषा के संबंध में डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित लिखते हैं[275] गुरु रविदास की काव्य-भाषा ब्रज-मिश्रित अवधी है। इनकी भाषा

---

274. सं० - योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृष्ठ -179

275. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित - हिन्दी संत साहित्य, पृष्ठ - 223

में अवधी के कारक चिन्हों का प्रयोग पाया जाता है। खड़ी बोली की विभक्तियों और उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी इनकी भाषा में हुआ है। स्थान-स्थान पर पंजाबी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। ब्रजमिश्रित अवधी भाषा --

"दूध त बछरे थनहु बिटारिओ ।।
फूल् भवरि जलु मीनि बिगारिओ ।।
माई गोविन्द पूजा कहा ले चरावउ ।।
अवरु न फूलु अनुपु न पावउ ।।
मैलागर बेह है भुइअंगा ।।
धूप दीप नईं बेदहि बासा ।।
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ ।।
पूजा अरचा अहि न तोरी ।।
कहि रविदास कवन गति मोरी ।।"

कहीं-कहीं 'शब्द' में संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य दिखाई देता है --

"माधव अविधा हित कीन, ताते विवेक दीप मलीन ।।
मृग, मीन, भृंग, पतंग, कुंजर एक दोष विनाश ।
पंच दोष असाध जामहि, कौन ताकी आस ।।
जल थल जीव जहां तहां लौ करम बा संग जाई ।
मोह फांस अबिद्या बांध्यो करिय कौन उपाई ।।
त्रिगुण योनि अचेत सम्भव, पाप पुण्य असोच ।
मानुषावतार दुर्लभ, तिहुं संगति पोच ।।
रैदास दास उदास, तजि भ्रम, जप न तप गुरु ज्ञान ।
भनत जब भव हरन, परमानन्द करहु निदान" ।।[276]

---

276. सं० योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, पृष्ठ -185

गुरु रविदास जी की वाणी में अरबी-फारसी के शब्द भी सुन्दर प्रयोग हुआ है --

"बन्दे जानी साहिब गनी ।
समझि वेद कतेब बोले, काबे में क्या मनी ।
जवानी जुमी जमाल सूरत देखिये थिर नाहीबे ।
साही सपेदी चतुरंगी नाना रंग बिलास बे ।।
न पैंद तें पैदा किया, पैमाल करन न वार बे ।
दम छे से सहस्त्र इक्कीस हर दिन खजाने तें जाहि बे ।।
मनी मारे गर्व गाफिल बेमेहर बे पीर बे ।
दरीखाने पड़त चोबा, होत नहीं तकसीर बे ।।
कुछ गांठ खरची मेहर होसा सेर खूनी हाथ बे ।
धनी का फरमान आया , तब कीआ चाले साथ बे ।
तजि बदजबान बेनजर कमदिल करि कसम की कान बे ।
रैदास की अरदास सुनि, कुछ इक लाल बिज्ञान बे"।।[277]

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुरु रविदास जी ने अपनी काव्य-भाषा के माध्यम के रूप में ब्रज, अवधि, खड़ी बोली, संस्कृत, अरबी-फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है । इन्होंने इन भाषाओं के शब्दों द्वारा लोक भाषा का निर्माण किया था । इनकी भाषा सन्तों की सधुक्कड़ी भाषा है, जो लोक भाषा के अधिक समीप जान पड़ती है ।

गुरु रविदास जी का शब्द भंडार समृद्ध है, जिनमें तत्सम शब्दों के अन्तर्गत - कष्ट, नल, मोह, कमल, सहज, सुरति-निरति, हरि, मुख आदि हैं । तद्भव शब्दों में --- गुन, धरम, सरीर, तीरथ, रटत, बालि आदि हैं । विदेशी शब्द - तत्सम और तद्भव दोनों रूपों में मिलते हैं ।

---

277. सं० योगेन्द्र सिंह - संत रैदास , पृष्ठ - 185

तत्सम जैसे दरबार, दीदार आदि तथा तद्भव, दरद, (दर्द) दोजक (दोजख),। गुरु रविदास वाणी में मिलते विदेशी शब्दों को निम्नलिखित भाषागत वर्गों में रख कर विवेचित किया जा सकता है। फारसी के शब्द अदोह, कागद, गूंगा, गुनाह, दीदार, पिआला, दरद, जुलाहा, दरबार, दोजक, पोच, बन्दगी, बन्दा, बाजी, गंदा, निवाज, खूब, बाजीगर, पीर, पैगम्बर आदि। अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया है -- अलह, कतेब , कुरान, काबा, गरीब, रहीम, साहिब सुलतान, हजूर आदि।

गुरु रविदास जी ने अभिव्यक्ति को सौन्दर्य प्रदान करने के लिए कहीं-कहीं मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। इससे उन की भाषा में और अधिक शक्ति तथा पूर्णता आ गई है।

अलंकार —

काव्य में अलंकार से अभिप्राय साहित्यिक आभूषणों से है। वे उपकरण जिनसे काव्य में शोभा बढ़ती है। अलंकारों के प्रदर्शन के लिए गुरु रविदास-वाणी की रचना नहीं हुई थी। सहज-काव्य - प्रतिभा से युक्त गुरु रविदास जी की वाणी में अनायास ही अनेकों अलंकारों का समावेश हुआ है। सन्तों के काव्य को कृत्रिम अलंकरण की आवश्यकता कभी महसूस नहीं हुई। परन्तु , कहीं-कहीं अलंकार अनायास ही उनकी वाणी से अलंकृत होकर गौरवान्वित होते चले आये। गुरु रविदास आदि सन्तों के काव्य को अलंकार प्रधान काव्य नहीं समझना चाहिए। क्योंकि इन सन्तों के लिए काव्य-सृजन साधन मात्र था, साध्य नहीं। फिर भी काव्य प्रतिभा के प्रभाव से इनकी वाणी में

अलंकारों की स्वाभाविक मनोहारी योजना देखने में आती है। उसके उदाहरण संत कबीर - काव्य में भी मिलते हैं और गुरु रविदास-वाणी में भी।

शब्दालंकार ----

अनुप्रास - इस अलंकार के तृप्यानुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, अन्त्यानुप्रास आदि सभी भेदों में छेकानुप्रास स्वाभाविक विदग्ध जन-प्रिय है। इस शब्दालंकार में एक या एकाधिक वर्णों का दो बार प्रयोग होता है।

"मन मेरो। सति सरूप विचार।
आदि अंति अनंत परमपद संसा सकल निवार।।"[278]

---सति सरूप, अंत-अनंत, संसा-सकल आदि पद छेकानुप्रास के उदाहरण हैं ---

"मनसा मन्दिर मांहि धूप धुपाइये।
प्रेम प्रीत की माल राम चढ़ाइये।।"[279]

चमक ---

निरर्थक तथा भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति निरर्थक है। इसका भी उदाहरण गुरु रविदास-वाणी में मिलता है ---

"जोति-जोति सम जोति, जोतहि मिलि रह्यो ऐ।"

यहां जोति शब्द क्रमशः जीव के लिए, प्रकाश के लिए और ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है।

---

278. गुरु ग्रन्थ साहिब - पद - 71
279. -- वही --- , पद - 113

वीप्सा ---

जब किसी बात को समझाने हेतु उस पर बल देने के लिए एक शब्द दो से अधिक बार प्रयुक्त हुआ हो तो वह अलंकार वीप्सा है --

'हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे ।
हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे ।।'

उपमा ---

गुरु रविदास जी ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दर और मार्मिक उपमाओं की सहायता ली है । यह अलंकार गुरु रविदास जी का सर्व-प्रिय और सर्वाधिक प्रयुक्त अलंकार है । इनकी वाणी में उपमा के अनेक भेद-प्रभेद मिलते हैं । इन्होंने उपमाओं का चयन जन-जीवन से किया है । इसीलिए इनकी उपमायें मधुर, रमणीय और आकर्षक हैं ---

'माधो करम कैसदु न विचार, ताते द्वैत भाव दरसई ।।
कनक-कुण्डल सूत पर जुदा, भुजंग भ्रम जैसा ।
जल-तरंग पाखन प्रतिमा ज्यों , ब्रह्मजीव दुति ऐसा ।।[280]

दृष्टान्त --

गुरु रविदास जी ने दुरुहतम दार्शनिक तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को व्यक्त करने तथा उन्हें बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टान्तों का प्रचुर प्रयोग किया है । इनके दृष्टान्त जन-जीवन से संगृहीत हैं । ये दृष्टान्त व्यापार-साम्य और गुण-साम्य सम्पन्न होने के कारण प्रभावशाली और रोचक बन गए हैं । ये बड़े ही सरल और स्पष्ट हैं । --

---

280. सं० योगेन्द्र सिंह - संत रैदास , पृष्ठ -182

"तोही-मोही मोही तोही अन्तरु कैसा,
कनक कटिक जल-तरंग जैसा ।।"

स्वभावोक्ति ---

गुरु रविदास वाणी में इस अलंकार का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुवा है । इससे भाषा में चमत्कार का गुण आता है । यह पाठक के हृदय में कौतूहल की भावना पैदा करता है --

"भाई रे राम कहां है मोहि बतावौ ।
सत्य राम ताके निकट न आवौ ।।
राम कहत सब जगत् भुलाना सो यह राम न होई ।
करम अकरम करुणामय केशव, कर्ता नांव सु होई ।।
जा रामहिं सब जग जानत, भरम भूले रे भाई ।
अलख नाव जाको ठौर न कितहूं, क्यूं न कहौ समझाई ।।"[281]

रूपक ---

गुरु रविदास जी ने भावों को स्पष्ट करने के लिए रूपकों का प्रयोग किया है । इससे वाणी में आकर्षक निखार आया है ---

"घट अवघट डूगर घणा इकु निरगुणु चेतु हमार ।
रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि ।।"[282]

प्रतीक ---

'प्रतीक'[283] शब्द का प्रयोग उस दृश्यमान पदार्थ के लिए होता है, जो मस्तिष्क में ऐसी किसी वस्तु का सादृश्य उत्पन्न करता है, जो

---

281. सं० योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृ० -191
282. गुरु ग्रन्थ साहिब, गउड़ी रविदास जी, पृष्ठ -346
283. डा० ब्रजजीत गौतम - कबीर काव्य में प्रतीक विधान, पृ० -30-31

दिखाई तो नहीं पड़ती लेकिन सादृश्य के कारण जिसे हम समझ सकते हैं। प्रतीक का चयन दृश्यमान वस्तुओं से किया जाता है तथा वह किसी अदृश्य वस्तु के रूप, गुण अथवा क्रिया का प्रतिनिधित्व करता है।प्रतीक और उसके द्वारा घोषित विषय में उक्त तीनों में से कोई एक साम्य होना आवश्यक है।

साधारण आंख से न दिखाई पड़ने वाली, पर अध्ययन तथा अनुभव से बोधगम्य वस्तु के अंग और अवयव को इंगित करने वाली, संकेत करने वाली वस्तु 'प्रतीक' है। जो वस्तु हमारे सामने नहीं होती, जिसे हम देख नहीं सकते, उसकी अनुभूति को वाणी से व्यक्त करना कठिन होता है। फलत: उसकी अभिव्यक्ति के लिए हम अपने दैनिक जीवन के विविध क्षेत्रों से कोई ऐसी वस्तु चुनते हैं, जिसमें हमारी अनुभूति का अधिकाधिक साम्य हो तथा लोक में प्रचलित और परिचित हो। उसके माध्यम से हमारी अनुभूति दूसरों के लिए भी सरलता से बोधगम्य बन जाती है। अभिव्यक्ति की इस शैली को साहित्य में प्रतीक-योजना या प्रतीक-विधान की प्रक्रिया का नाम दिया गया है।

भावात्मक रहस्यपरक प्रतीक ---

गुरु रविदास जी ने परमतत्व के लिए 'निर्गुण' और सगुण के बन्धन को स्वीकार नहीं किया। इन्होंने अपने इष्ट के लिए दास्य और वात्सल्य-भाव के अतिरिक्त दाम्पत्य भाव की मृदुल अभिव्यंजना की है। इन्होंने आत्मा को उस पत्नी का प्रतीक माना है जो पूर्णरूपेण अपने प्रियतम पर न्यौछावर हो जाती है। विरही आत्मा को जब वियोग अधिक सताता है तब वह प्रभु प्रियतम का दर्शन चाहती है। दर्शन

न होने पर वह दारुण पीड़ा का अनुभव करती हुई अन्त में प्रभु से मिलने की प्रार्थना करती है ---

"पीव बिना सेज को का सुख, विरह विथा तन खाई ।
मेटि दुहाग सुहागिनि कीजै, अपने अंग लाई ।
कहै रैदास स्वामि तैं बिछुरे एक पलक जुग खाई ।।"[284]

तात्विक या दार्शनिक प्रतीक शैली---

गुरु रविदास जी ने अपने दार्शनिक विचारों को सरलतापूर्वक अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए अनेकों प्रतीकों का आश्रय लिया । इन्होंने परमात्मा के लिए बाजीगर और संसार के लिए बाजी के प्रतीकों का प्रयोग किया है । ऐसा करके परम-तत्व में सत्य और अनश्वर आदि गुणों का प्रतिपादन करते हुए जगत की बाजी की भांति नश्वर बताया है --

"सब में हरि, हरि में सब है, हरि अपने जिन जाना ।
अपनी आप साखि नहीं दूसर, जानन हरि सयाना"।।[285]

साधनात्मक रहस्यपरक पारिभाषिक प्रतीक ---

गुरु रविदास जी ने पवन, गंगा, यमुना, अनाहद, सुन्नमंडल आदि हठयोगपरक शब्दों का प्रयोग भी किया है ---

"ऐसा ध्यान धरौ बनवारी, मन पवन दृढ़ सुषमन नारी
सो जप जपू जो बहुरि न जपना, सो तप तपूं जो बहुरि न तपना"।।

---

284. सं0 योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृष्ठ -177, पद - 62
285. -- वही -- -- वही -- , पद - 13

"उल्टी गंग जमुन में लाऊं, बिन ही जल मज्जन दे पाऊं ।।
लोचन भरि-भरि बिम्ब निहारूं, जोति विचार न और विचारूं ।
सुन्न मंडल में मेरा वास, ताते जीव में रहूं उदास ।।
कह रैदास निरंजन ध्याऊं, जिस पर जाय बहुरि नहिं आऊं"।।[286]

गुरु रविदास जी ने हठ-योग की शब्दावली भले ही अपनाई है परन्तु इनका मन हठयोग की जटिल साधना में बिल्कुल नहीं रम सका । इन्होंने सहजयोग को अपनाते हुए इसे ही सिद्धि-प्राप्ति का कारण बतलाया है --

"भाई रे सहज बन्दो लोई
बिन सहज सिद्धि न होई"।[287]

संख्यावाचक प्रतीक ---

गुरु रविदास वाणी में संख्यावाचक प्रतीक भी दिखाई देते हैं --

"मृग, मीन, भृंग, पतंग, कुंचर एक दोष विनाश ।
पंच-दोष असाध जामहिं, कौन ताकी आस"।।[288]

विपर्यय प्रधान प्रतीक अर्थात् उलटवासी --

इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग गुरु रविदास वाणी में बहुत कम हुआ है । इसका एक उदाहरण इनकी वाणी में उपलब्ध होता है --

---

286. सं० योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृष्ठ - 148, पद - 14
287. --- वही --- पृष्ठ - 148, पद - 4
288. --- वही --- पृष्ठ - 149, पद - 6

'देहु कलाली एक पियाला ऐसा ज्ञानु है मतवाला ।।
अरे कलाली ते क्या कीया, सिरका साते प्याला दीवा ।
कहँ कलाली प्याला देऊं, पीवन हारे का सिर लेऊं ।।
सहज सून्य में माठी सजै, पीवै रैदास गुरमुख दऊं"।।[289]

गुरु रविदास जी की प्रतीक-योजना को देखने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि संत-कवि ने सिद्धों-नाथों की प्रतीक पद्धति में भक्ति का समावेश किया है। इससे सिद्धों नाथों की प्रतीक पद्धति में भक्ति का समावेश किया है। इनकी प्रतीक पद्धति के विषय में लेखक-द्वय ने ठीक ही कहा है -- ' कबीर [290] की भांति न मति-भ्रम उत्पन्न करने वाला न इसमें भाषा का 'अटपटापन' है न भाव की जटिलता। अपने समय की प्रचलित भाषा में इन्होंने अपने आराध्य देव की उपासना के गीत भी गाए और सीधे सरल शब्दों में समाज में व्याप्त वैषम्य का निराकरण भी किया।

इस प्रकार जहां एक ओर गुरु रविदास जी की भक्त कवि के रूप में अभिव्यक्ति हुयी है, वहीं दूसरी ओर उसका सामाजिक व्यक्तित्व भी समाज के उन्नयन के प्रयत्न में कवि के रूप में मुखरित हुआ है।

संत कबीर ने भी प्रतीक रूप में दाम्पत्य प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। उनके इस दाम्पत्य प्रेम की सब से प्रमुख विशेषता, पवित्रता, सात्विकता, एवं आध्यात्मिकता है। इसमें विरह मिलन के मधुर चित्र भी चित्रित किए गए हैं किन्तु उसमें कहीं पर भी वासना की दुर्गन्ध नहीं आती। उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सूफियों के दाम्पत्य सम्बन्ध से भिन्न

---

289. सं० योगेन्द्र सिंह , संत रैदास, पृष्ट -168, पद -
290. स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय - संत रविदास और उनका काव्य , पृष्ठ - 185

है। सूफी लोगों ने अधिकतर प्रेमी और प्रेमिका के प्रतीक को ही महत्व दिया। किन्तु संत कबीर का प्रेम पति-पत्नी का पवित्र प्रेम है जो कि शास्त्रीय विधि से विवाह हो जाने के पश्चात उत्पन्न हुवा है। यह भी लौकिक विवाह मात्र नहीं है। आत्मा और परमात्मा का विवाह लौकिक हो भी कैसे सकता है। इस विवाह में साधक की आत्मा ही वधु है। स्वयं राम ही वर है। शरीर वेदिका है, ब्रह्मा पुरोहित हैं तैंतीस करोड़ देवता और अट्ठासी हजार ऋषि इस सम्बन्ध के साक्षी बाराती हैं। भला इस प्रेम से पवित्र विवाह कौन हो सकता है। तभी तो इस विवाह से उद्भूत प्रेम के आदर्श सती और सूरा हैं। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर यदि आत्मा में किसी प्रकार का विकार शेष रह जाता है तो मिलन नहीं होता। इस परिस्थिति में आत्मा वधु किस प्रकार उद्विग्न हो उठती है।

"कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जगजीवन गुसाईं।
हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागन जो पिय भावै, कहि कबीर फिर जनमि न आवै"।।[291]

जब आत्मारूपी वधु का परमात्मा रूपी प्रियतम से इस प्रकार संबंध स्थापित हो जाने पर भी मिलन नहीं होता तभी वह तड़प कर पुकार उठती है :--

"वै दिन कब आवहिंगे माय।
जा कारन हम देह धरी है, मिलबो अंग लगाय"।[292]

---

291. कबीर ग्रन्थावली - पृष्ठ - 277

292. -- वही -- पृष्ठ -191

दाम्पत्य प्रतीकों के अतिरिक्त संत कबीर ने माता और पुत्र के प्रतीकों के सहारे भी अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है। उन्होंने अत्यन्त विनम्र भाव से हरि रूपी जननी के प्रति आत्म निवेदन किया है --

'हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न अवगुण बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, दुखी बालक दुखी महतारी"।[293]

संत कबीर ने कहीं-कहीं पर पशु और उसके स्वामी के प्रतीक भी कल्पित किए हैं। एक स्थल पर उन्होंने अपने को कुत्ता कहा है और राम को अपना स्वामी। अपने को गोरू और कुत्ता कहकर उन्होंने लक्षणा के सहारे अपनी परवशता, निरीहता, जड़ता, अज्ञानता आदि विविध दुर्बलताओं को अभिव्यक्ति दी है। इन विविध सम्बन्ध मूलक प्रतीकों के अतिरिक्त संत कबीर ने और भी कई प्रकार के प्रतीकों की योजना की है -- सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक सांख्यमूलक प्रतीक।

रूपकात्मक प्रतीक ---

नाथ पंथी जोगियों में बहुत से सांकेतिक प्रतीक प्रचलित थे। गगन-मंडल से वे ब्रह्म रंध्र का अर्थ लेते थे। इसी प्रकार के इनमें और भी बहुत से सांकेतिक प्रतीक प्रचलित थे। संत कबीर ने इस परम्परा से प्राप्त सांकेतिक प्रतीकों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया था। उन्होंने भी गगन-मंडल का प्रयोग ब्रह्म रन्ध्र के अर्थ में किया है।

जोगियों में बहुत से पारिभाषिक प्रतीक भी प्रचलित थे। संत कबीर ने इन पारिभाषिक प्रतीकों का नाथ-पंथियों के ढंग पर ही

---

293. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ट - 123

प्रयोग किया है। नाथ-पंथियों में मूलाधार के लिए सूर्य और सहस्त्रार के लिए चन्द्र पारिभाषिक प्रतीक माने गए हैं। वे लिखते हैं ---

"सूर्य समाणा चन्द में दुहुं किया घर एक।
मन कर चिन्ता तब भया कुछू पूर्वला लेख"।।[294]

इसी प्रकार और भी बहुत से पारिभाषिक प्रतीकों को संत कबीर - काव्य में ढूंढा जा सकता है।

सिद्ध और नाथपंथी जोगी बहुत से संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में करते थे। संत कबीर ने उनकी इस प्रवृत्ति को भी जस का तस आत्मसात् किया। संत कबीर ने भी बहुत से संख्या-वाचक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में किया है ---

"चौंसठ दीया जोय के चौदह चंदा मांहि।
तेहि घर किसका चानणो जेहि घर गोविन्द नाहीं।।[295]

यहां चौंसठ कलाओं और चौदह विद्याओं को प्रतीक रूप में लिया गया है। इस प्रकार से और भी संख्या-मूलक प्रतीकों के प्रयोग पाये जाते हैं।

संत कबीर ने अपने विचार अधिकतर उलटवासियों में प्रकट किए हैं। इन उलटवासियों को उन्होंने उल्टा वेद कहा है। उलटवासियों की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कबीर में उलटवासियां कहीं-कहीं मिल जाती है ---

"बैल बियाय गाय भई बांझ, बछरा दूहे तीनों सांझ।

---

294. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, वाणी भाग से
295. --- वही ---- वही ----

संत कबीर की अधिकांश आध्यात्मिक उक्तियां उलटवासियों के रूप में अभिव्यक्त हुई है। उलटवासियों की शैली के कारण इतनी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियों में भी एक विचित्र प्रकार का समावेश हो गया है। चमत्कार काव्य का प्राण माना जाता है और विशेषकर वह चमत्कार जिसमें कोई विशेष ध्वनि निहित रहती है। संत कबीर की उलट-वासियों में अलंकार-मूलक चमत्कार तो मिलता ही है, उसमें व्यंजना के विविध स्वरूप भी परिलक्षित होते हैं।

रस के उपयुक्त शब्दों, विचारों और धारणाओं के औचित्य पर ही काव्य कला की परिपक्वता निर्भर है। इस दृष्टि से संत कबीर-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है ---

'विनसं जाइ कागद की गुड़िया, जब ला पवन लगै तबै उड़िया।
गुड़िया को सबद अनाहद बोलै, खसम लियें कर डोरी डोलै।
पवन थक्यो गुड़िया ठहरानी, सीस धुनि धुनि रोवै प्रानी।
कहै कबीर भजि सारंग पानी, नहीं तर हुइहै खैंचा तानी'।[296]

इस पद में संत कबीर मानव-शरीर की नश्वरता, ईश्वर की जीव के प्रति सूत्रधारिता आदि बातें ध्वनित करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने 'कागद की गुड़िया', 'पवन' और खसम शब्दों का बड़ा सार्थक प्रयोग किया है। इसमें कठपुतली के नाच का रूपक प्रतीत होता है। जिस प्रकार से कठपुतलियों का स्वामी या सूत्रधार ऊपर से उनकी डोरी के सहारे वायु में उन्हें नृत्य कराता रहता है, उसी तरह से ईश्वर भी जीव रूपी गुड़िया का सूत्रधार है। इस गुड़िया का शरीर लकड़ी का न हो कर कागज़ का है। इसीलिए सरलता से नष्ट हो सकता है।

---

296. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - वाणी भाग से

उसमें अपनी कोई शक्ति नहीं है। वह केवल पवन के सहारे प्रवर्तित होती है। संत कबीर ने पवन शब्द से एक ओर तो प्राण का संकेत दिया है और दूसरी ओर सीधा-सादा अर्थ वायु लिया है। 'गुड़िया' शब्द से मानव-शरीर का आकार साभ्यपूर्ण रूप में प्रकट किया है। इसी प्रकार 'खसम' शब्द भी सार्थक और उचित है। एक ओर तो वह ब्रह्म का वाचक और दूसरी ओर कठपुतलियों के संचालक का है। इसी प्रकार अन्तिम पंक्ति का सारंग पानी भी सार्थक और औचित्यपूर्ण है। सारंग पानी प्रभु ही जीव को तमाम व्याधियों से मुक्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त संत कबीर में शब्दालंकारगत रमणीयता भी ढूंढी जा सकती है। यमक और श्लेष आदि के उदाहरण यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

शब्द और अर्थ दोनों की अन्यूनातिरिक्त साहित्य में अपेक्षित होती है। महात्मा कबीर की वाणी या तो उपदेश के रूप में मुखरित हुई या आध्यात्मिक तत्वों के निरूपण में। अतएव उनमें शब्द और अर्थगत रमणीयता सर्वत्र तो नहीं मिलती, किन्तु फिर भी उनके रूपकों, प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों और रहस्यवादी रचना में उत्कृष्ट उपयुक्त सौन्दर्य भी दिखलाई पड़ता है। उनके इस पद से हमें शब्द और अर्थ सौन्दर्य के दर्शन होते हैं ---

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।'[297]

संत कबीर ने 'लाल' शब्द एक ओर तो प्रेमस्वरूपमयी ब्रह्म की व्यंजना के लिए प्रयुक्त किया है, दूसरी ओर 'लाल' शब्द परदेशी प्रिय का वाचक होता है। सर्वत्र लालिमा की व्यंजना करके कवि ने मंसूर

---

297. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 43

हल्लाप के प्रेमवाद और सौन्दर्यवाद का सुन्दर समन्वय सा किया है साथ ही इसमें साधक और साध्य की अद्वैत स्थिति का भी सुन्दर संकेत है --

"कबीरा हरिदी पीउरी चूना उज्जर भाय ।
राम सनेही यों मिले दूनो बरन गंवाय ।।"[298]

यहां एक ओर तो कवि ने चूना और हरदी के मिलन पर उनका जो रूप परिवर्तन हो जाता है उसका वैज्ञानिक पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर हल्दी और चूने को लाक्षणिक प्रतीक मानकर तपस्वी साधक और सतोगुण में ईश्वर का भी अर्थ लिया जा सकता है। साधक साध्य से मिलकर उसी तरह से प्रेमस्वरूप हो जाता है, जिस प्रकार हल्दी और चूना मिलकर अरुण वर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं।

संत कबीर की सुधारात्मक, उपदेशात्मक, यौगिक उक्तियों में किसी प्रकार के रस की अनुभूति नहीं होती। परन्तु कुछ नश्वरता का उपदेश देने वाली उक्तियों में शान्ति रस की अभिव्यक्ति अवश्य हो गई।

महात्मा कबीर भक्त पहले थे और कवि बाद में। इनकी भक्ति परक जितनी भी उक्तियां हैं उनमें तो शान्त रस की अभिव्यक्ति पाई जाती है या भक्ति रस की। शान्त रस और भक्ति रस के सम्बन्ध में मतभेद है। भरत मुनि ने भक्ति को शान्त के अन्तर्गत ही माना है। और भी बहुत से अन्य आचार्यों ने भक्ति को रस नहीं माना है किन्तु संत कबीर की भक्ति रसमयी यह उक्ति देखने के बाद भक्ति रस की अनुभूति स्वयमेव अवश्य ही हो जाती है --

---

298. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ -263

'भजि नारदादि सुकादि वंदित, चरन पंकज भामिनी
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोमनी"। 299

यद्यपि संत कबीर ने अलंकारों की परवाह नहीं की तो भी उनकी कविता में अलंकार स्वाभाविक रूप से आ गए हैं। रूपक और अन्योक्तियां तो उनके रहस्यमय विषय के अनुकूल ही हैं।

'गगन धरा घहरानी', 'पीयत प्याला प्रेम का' तथा 'रस गगन गुफा में अजर झरे' अनुप्रास के अच्छे उदाहरण हैं। यमक में भी कबीर-वाणी से एक दो उदाहरण मिलते हैं ---

'कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बे पीर।।
एक दिन ऐसा होइगा को काहु को नांहि।
घर की नारी को कहे तन की जारी जांहि। 300

'घर जारे घर ऊबरे, घर राखे घर जाये' में विरोधाभास की छटा है।

संत कबीर की रचनाओं में माधुर्य गुण की प्रधानता है। उपदेशात्मक उक्तियों में प्रसाद गुण भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। संत कबीर का रहस्यवाद अत्यन्त मधुर एवं रसात्मक है। उसमें श्रृंगार रस पूर्ण उक्तियों में माधुर्य गुण की पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है। उनकी रचनाओं में माधुर्यगुण की प्रतिष्ठा मनोरम है --

---

299. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 15
300. -- वही --- , पृष्ठ - 81

'पथु निहारे कामिनी लोचन भरले उसासा ।
उर न भीजे पथु न हरि दर्शन की बासा ।'[301]

माधुर्य गुण के अतिरिक्त प्रसाद गुण की भी कमी नहीं है । उनकी उपदेशात्मकता और सुधारात्मकता उक्ति प्रसाद गुण सम्पन्न है । ऐसी उक्तियां अधिकतर खड़ी बोली में मिलती हैं । इनकी भाषा सरल, सीधी और स्पष्ट होती है । स्वाभाविक दृष्टान्त उदाहरण उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से प्रसादात्मकता और बढ़ गई है ---

'कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढै वन मांहि ।
ऐसे घटि-घटि राम हैं दुनिया देखै नाहिं ।'[302]

'यहु तन काचा कुम्भ है, चोट चहु दिसि खाइ ।
एक राम के नाम बिन , जदि तदि प्रलै जाई ।।'[303]

भाषा अभिव्यक्ति वाणी की प्राणशक्ति का दूसरा नाम है । इसे हम अपनी अनुभूतियों को दूसरे तक पहुंचाने की प्रक्रिया भी कह सकते हैं । भाषा और अभिव्यक्ति का घनिष्ट सम्बन्ध है ।

संत कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है । संत कबीर की भाषा के सम्बन्ध में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है -- 'भाषा'[304] पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है

---

301. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 85
302. --- वही --- , पृष्ठ - 87
303. --- वही ---- , पृष्ठ - 24
304. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर , पृष्ठ -216

उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है -- बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा दे कर। भाषा कुछ संत कबीर के सामने लाचार सी नज़र आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके और अकह कहानी को रूप दे कर मनोग्राही बना देने की तो जैसे ताकत कबीर की भाषा है वैसी बहुत कम लेखकों में पायी जाती है।

उनकी बानियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। इन भाषाओं का मिश्रण तो मिलता ही है साथ ही खड़ी, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।

संत कबीर और कबीर ग्रन्थावली के संकलन कर्ता हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डा० रामकुमार वर्मा और श्री श्यामसुन्दर दास हैं। दूसरे ग्रन्थ `संत कबीर` `गुरु ग्रन्थ साहेब` में दिए हुए पदों का संकलन है। गुरु ग्रन्थ सिक्खों का अत्यन्त प्रामाणिक और विश्वसनीय ग्रन्थ है। इन दोनों ग्रन्थों की भाषा की कुछ सामान्य प्रवृत्तियां हैं ----

1. उसमें पंजाबीपन अधिक है।
2. उसमें भोजपुरी भाषा के संज्ञा और क्रिया एवं प्रचुरता से मिलते हैं।
3. उनकी भाषा में कहीं कहीं खड़ी बोली के अच्छे उदाहरण मिलते हैं।
4. उसमें विविध प्रान्तीय भाषाओं का मेल है
5. भाषा का रूप अधिकतर विषय और भाषा के अनुरूप है।
6. वह अत्यन्त सरल और सीधी सादी है।

7. उसमें संकेतात्मकता, प्रतीकात्मकता और पारिभाषिकता अधिक है।

8. उसमें किसी एक भाषा के नियमों का पालन नहीं किया गया है।

संत[305] कबीर की भाषा में हमें भोजपुरी का भी पुट मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में संत कबीर की भाषा में पाई जाने वाली संज्ञा और लघ्वन्त और दीर्घान्त दोनों रूपों के उदाहरण उद्धृत किए हैं। इसके अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा[306] के अनुसार कुछ ऐसे शब्द रूप भी हैं जिनके सम्बन्ध में धारणा है कि मूल रूप में भोजपुरी ही थे। किन्तु लिपिकारों के द्वारा उनका यहां भी रूपान्तर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। क्योंकि बनारस में रहने वाले की भाषा में स्वभाव से ही पूर्वी रंग होना चाहिए। यह बात दूसरी है कि उनकी बानियां जिनकी रचना पंजाबी में हुई हो पंजाबीपन लिये हुए हो। पंजाबी और भोजपुरी के अतिरिक्त संत कबीर की ऐसी भी बहुत-सी उक्तियां हैं जो खड़ी बोली का सुन्दर उदाहरण कही जा सकती हैं।

"भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो झूठ।
मैं का जानो राम को, नैनो कबहुं न दीठ।।"[307]

संत कबीर की भाषा का रूप अधिकतर विषय, व्यक्ति और भाव के अनुकूल है। जब वे किसी मुसलमान को कोई बात समझाते थे तो वह

---

305. डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ -37

306. ---- वही ---- पृष्ठ -20

307. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ -1- 14

फारसी मिश्रित उर्दू का प्रयोग करते थे । इस प्रकार हिन्दू धर्म की चर्चा करते समय तथा पण्डितों को समझाते समय शुद्ध हिन्दी का ही प्रयोग करते थे । मौलवी को समझाते हुए वे कहते हैं ---

"मोमां तुम्हसों बोल्यां वाणि नहीं आवै ।
हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जस मनि भावै ।।
अल्लाह अलि दीन का साहिब, जारे नहीं फुरमाया ।
मुरसदि पीर तुम्हारे है को, कहो कहां थैं आया ।।"[308]

इसी प्रकार हिन्दू महात्माओं और संतों के लक्षण बताते हुए शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया है ---

"निखैरी निहकामता, सांई सेती नेह ।
विषिया सूं न्यारा रहे, संतनि का अंग एह ।।"[309]

संत कबीर की रचनाओं में मारवाड़ी, राजस्थानी, पंजाबी भोजपुरी आदि के बहुत से रूप मिलते हैं ---

"आंखड़िया प्रेम कसाइयां, लोग जाने दूखड़ियां ।
साईं अपने कारणै, रोई रोई रातड़ियां ।।"[310]

संत कबीर की भाषा पूर्ण सधुक्कड़ी है।उसमें किसी प्रकार का मिथ्या क्लिष्टत्व नहीं है । वह बिलकुल सीधी सादी और सरल है ।

---

308. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 175
309. -- वही --- , पृष्ठ - 50
310. --- वही --- , पृष्ठ - 54

उसमें व्यर्थ के अलंकार नहीं मिलेंगे । उनकी अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता ही उनकी भाषा का सौष्ठव है । उसको किसी भी प्रकार के वाह्य आडम्बरों से सजाने की चेष्टा नहीं की गई है ।

संत कबीर की भाषा सरल और सीधी होते हुए भी संकेतात्मक, प्रतीकात्मक और पारिभाषिक है । इसका प्रमुख कारण यही है कि उनकी रचनाओं में योग साधना और रहस्यवाद का विस्तार से वर्णन मिलता है । इन वर्णनों की भाषा का संकेतात्मक प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक होना स्वाभाविक है । संकेतात्मक प्रतीकात्मक और पारिभाषिक होने के कारण ही उनकी बानियां दुर्बोध हो गई हैं । इसे हम संत कबीर की भाषा का दोष न मानकर उनके वर्ण्य विषय की विशेषता कह सकते हैं ।

षष्ठम् अध्याय

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर दोनों संत कवियों के वृत्तचित्रात्मक शोध का निष्कर्ष

-0-0-0-0-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' विक्रम सम्वत् 1375 से 1700 तक माना गया है। इस युग को यदि सामन्तवादियों तथा रूढ़िवादियों का युग कहा जाये तो अनुचित न होगा। इस युग में समूचे देश पर निराशा और मुसीबतों के बादल छाये थे। मुस्लिम शासकों के प्रभुत्व की सम्पूर्ण भारत पर धाक जम चुकी थी। हिन्दू राजाओं की शक्ति आपसी वैर-विरोध के कारण प्रायः समाप्त हो चुकी थी। रूढ़िवाद ने सत्य सनातन वैदिक धर्म की व्यवस्था का रूप बिगाड़ कर जन्म जाति को प्रमुखता दी जिसके कारण सारा हिन्दू समाज रूढ़िवादियों की आध्यात्मिक थक्केशाही एवं तानाशाही की कड़ी जंजीरों और कठोर बंधनों में जकड़ कर रह गया था। जातिवाद से उत्पन्न छूआछूत और ऊंच-नीच की विचारधारा ने हिन्दू समाज को इतना कमजोर बना दिया कि वह अपने अस्तित्व की रक्षा करने की शक्ति खोकर पूर्णरूपेण एक अपंग समाज होकर रह गया। अपने ही समाज में जिन करोड़ों व्यक्तियों को धर्म के नाम पर अस्पृश्य, अंत्यज एवं दलित बना कर समाज से पृथक और राजनैतिक रूप से संत्रस्त एवं पीड़ित करके चलते-फिरते अस्थिपिंजर बना कर रख दिया था, उस वर्ग को यदि किसी महामानव ने मानसिक संतोष, धार्मिक समानता तथा सामाजिक बराबरी का दर्जा देने का बीड़ा उठाया और एक क्रान्तिकारी सन्त समाज को जन्म दिया

तो वे थे शीर्षस्थ युग-पुरुष स्वामी रामानन्द जिनके प्रमुख शिष्यों संत कबीर और गुरु रविदास ने अपनी पवित्र वाणी द्वारा विचार-क्रान्ति की ऐसी चिनगारी दिखाई जो अन्धकार को प्रकाश में बदल गई और ऐसी अग्नि प्रज्ज्वलित की, जो तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों के बन्धनों की जड़ों को भस्मसात् करने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुई। जिन समाज सुधारक सन्तों ने परम्परागत जातिवाद के बन्धनों को चकनाचूर करने के लिए सामन्तशाही और रूढ़िवाद का डटकर बेखौफी के साथ मुकाबला किया उन में सन्त गुरु रविदास जी और सन्त कबीर ऐसे निर्भीक सन्त हैं, जिन्हें हम इस क्रान्तिकारी सन्त समाज के पथ-प्रदर्शक कह सकते हैं। मध्ययुगीन सन्तों में क्रान्तिकारी गुरु रविदास और संत कबीर ही ऐसे अग्रगण्य सन्त हुए हैं जो अपने जीवनकाल में ही अनुदारवादी हिन्दू समाज के रक्षक बने और सनातन वैदिक धर्म के मानव-समानता के सिद्धान्तों को एक नवीन और मानवीय परिभाषा देकर सामाजिक क्षेत्र में एक युगांतर उपस्थित किया और भारत में फिर से वैदिक भावनाओं को उजागर कर दिया, जिसके कारण चर्मकार रविदास काशी की विप्र विद्वान मण्डली द्वारा सम्मानित एवं पूजित हुए और सन्त नाभादास ने 'वर्णाश्रम अभिमान तजि पद रज वंदहि जासु की' कह कर उसकी पुष्टि कर दी।

सन्त गुरु रविदास और संत कबीर जी जहां अपने युग के एक निराले, निर्भीक, साहसी एवं अनन्य भक्त, समाज सुधारक और देश उद्धारक सन्त थे वहां वे अपने मध्ययुगीन सन्त समाज में भी अपना एक

अद्वितीय और विशिष्ट स्थान रखते थे। वे आध्यात्मिक साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुंचे हुए सन्त थे। दोनों संत भारत के महान सन्त गुरुओं में एक ऐसे महान तत्ववेत्ता थे, जिन्होंने अपने संघर्षमय जीवन द्वारा सोये हुए भारत को जगाया और सामाजिक संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की दल-दल से बाहर निकाल कर समाज को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाया। अपनी वाणी द्वारा सामाजिक विषमताओं का घोर विरोध करके जीर्ण-शीर्ण, पद-दलित एवं शोषित समाज को परिस्थितियों से जूझना सिखाकर नवजीवन का पाठ पढ़ाया।

ये सन्त कवि निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, वे सदा साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त रहे। वे सनातन धर्म के गौण सन्त धर्म की मान्यताओं को स्वीकार करते थे। वे सत्यभाषी, संयमी, जितेन्द्रिय, सदाचारी तथा कर्मयोगी सन्त थे। उनका पवित्र हृदय निर्वैरता, समदर्शी विचारणा और कल्याण की चिंतना से भरा हुआ था।

जिन धर्मरूढ़ियों और हिन्दू-मुस्लिम भेदों के प्रतिकूल संत कबीर ने संघर्ष किया था, वे ही रूढ़ियां और भेद उनके प्रयाण के साथ ही आपस में टकराने लगी। उनके शरीर को हिन्दू या मुसलमान सिद्ध करने के लिए ही विवाद उठ खड़ा हुआ था।

गुरु रविदास जी व संत कबीर के व्यक्तित्व को उनके कृतित्व में ही ढूंढा जा सकता है। उनके कृतित्व से स्पष्ट होता है कि वे वेद-कितेब, पूजा, अभिचार, जादू-टोना और जाति-पांति के विरोधी थे। उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा और भिक्षाजीवी साधुता को भी खण्डित किया था।

अविगत, अव्यक्त, अनुपम, निर्गुण, अनन्त ब्रह्म, जिसके संबंध में सभी दार्शनिक कहते-कहते थक चुके थे । जिसके संबंध में नेति नेति निगमहि कहि प्रचलित हो चुका था, इन सन्त कवियों ने उसे सबके घट-घट में व्याप्त बता दिया । इतना ही नहीं, संत कबीर ने सर्वसाधारण की भाषा में यह भी बताया कि हम और वह एक हैं, हम ही हैं वह ---

'हम सब मांहि सकल हम मांहि, हम थैं और दूसरा नाहीं ।
तीन लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ।।
षट दरसन कथ्यित हम भेखा, हम ही अतीत रूप नहीं रेखा ।।
हम ही आप कबीर कहावा, हम ही अपना आप लखावा"।।[311]

इतनी सरल परिभाषा को पाकर जन-साधारण का मन खिल उठा । उनमें आशा, उत्साह, उत्कण्ठा तथा जागृति की लहर व्याप्त हो गयी और वे गद्गद् हो गए । जनसाधारण में भक्ति का संचार हुआ। उस समय क्लिष्ट से क्लिष्ट साधना पद्धतियां प्रचलित थीं । कुछ ही वर्णों को योग भक्ति करने का अधिकार था । बहुसंख्यक समाज इन अधिकारों से वंचित था ।

संत कबीर ने सरल से सरल पद्धतियों का प्रचलन किया । किसी भी आडम्बर की, किसी भी दिखावे की, किसी भी पाखण्ड की तथा किसी भी वेष-भूषा की अपेक्षा न थी उनकी साधना के लिए ।

अपने दोषों को दूर करके सदाचरण द्वारा हृदय को निर्मल करना भर परमावश्यक था । जहां सद्भाव की वृद्धि हाथ आयी कि साधना सफल हो जाती थी । मन के केन्द्रीभूत होते ही हृदय निर्मल

---

311. कबीर ग्रन्थावली , पृ0 104

हो जाता था। साधक सहज समाधि की उपलब्धि के योग्य हो जाता है। इस सहजावस्था के लिए किसी प्रकार की विशेष साधना तथा आयोजन नहीं करना होता। जैसे ही हरिदर्शन होते हैं, मन निश्चिंत हो जाता है। फिर साधक को न आंख मूंदने की आवश्यकता होती है न कान बन्द करने की और न अन्य प्रकार के कष्ट उठाने की ही। वह सदा-सर्वदा खुली आंखों से अपने सब ओर हरि का सुन्दर रूप ही देखता है, जो कुछ कहता है वह हरिनाम ही होता है। वह जो सुनता है वह हरि-स्मरण है। जो कर्म वह करता है, वही पूजा होती है। द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है। गृह-त्याग की आवश्यकता नहीं होती उसे। उसका दैनिक कार्य-क्रम ही भगवान की संज्ञा हो जाता है। उसे आत्मिक स्थिति की उपलब्धि हो जाती है और उसे चिरसुख मिल जाता है।

इस प्रकार सहज धर्म और सहज-साधना की स्थापना देख कर शताब्दियों का बहिष्कृत समाज भी संगठित हो गया और संत कबीर द्वारा स्थापित सहज धर्म का अनुयायी बन गया।

इस्लाम का प्रचण्ड प्रभाव जो जनता में जमता चला जा रहा था, जिसकी चपेट में अनेक पीड़ित निम्न वर्ग पड़ कर, इस्लाम धर्म स्वीकार करके अपना अस्तित्व ही खो रहे थे, वह कम हुआ। धर्म-परिवर्तन का यह तूफान धीमा पड़ने लगा और धीरे-धीरे उसका अन्त ही हो गया। यदि संत कबीर अपने दार्शनिक सिद्धान्त और सहजधर्म की सरल साधना पद्धति लेकर न आये होते, तो भारत का इतिहास कुछ और होता।

उन्होंने भेद-भाव विहीन सहजधर्म की स्थापना की, जिसकी सीमाएं सब प्रकार के बन्धनों से निर्मुक्त थीं। उस धर्म को हिन्दू-मुसलमान, सवर्ण, अवर्ण सभी अंगीकार कर सकता था। उस सहज धर्म में मुल्ला मौलवी पंडित-पुजारी, योगी-यति, पीर-पैगम्बर किसी भी धार्मिक मुखिया की अपेक्षा न थी। धर्म के क्षेत्र के ये मध्यस्थ हाथ पर हाथ धरे बैठे रह गए। जन-साधारण इनके पंजे से निकल चुका था। वह स्वयं ही अब सब कार्य अपने-आप सम्पन्न करके धर्म-लाभ प्राप्त कर लेता था।

इस सहजधर्म रूपी अमृत का पान कर सर्व-साधारण अमर हो गया। अब उन्हें किसी अन्य धर्म को अपनाने की आवश्यकता ही न रह गयी थी। हिन्दू जाति और संस्कृति की गिरती दीवारें स्थिर हो गयीं और हिन्दू धर्म एवं जाति नष्टप्राय होने से बच गयी।

धर्म परिवर्तन का आन्दोलन तो समाप्त हो गया, परन्तु हिन्दू मुसलमान जोगी आदि के साम्प्रदायिक भाव तो बने रहे। इनके बने रहने पर साम्प्रदायिक कलह, झगड़े हो ही जाते थे। संत कबीर ने साम्प्रदायिकता को मिटाने का भी भरसक प्रयत्न किया ---

"जोगी गोरख-गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चारै।
मुसलमान का एक खुदाई, कबीर का स्वामी घटि-घटि रह्या समाई"।[31]

जोगी का गोरख, हिन्दू का राम, मुसलमान का खुदा सब एक ही के नाम हैं। उस एक सर्वशक्तिमान को चाहे जिस नाम से पुकारा जाये कुछ अन्तर नहीं पड़ता। फिर परस्पर झगड़ा करने, घृणा

---

३१२. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ -३२9

ईर्ष्या-द्वेष की बात भी नहीं । हम सब उसी भगवान के बनाये हुए हैं । हम सब भाई-भाई हैं ।

संत कबीर के इस उपदेश तथा प्रयास के फलस्वरूप अनेकों मुसलमान उनके शिष्य हुए और उन्होंने संत कबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार किया । इनमें नवाब बिजली खां, यारी साहब, बुल्ला साहब और दरिया साहब प्रमुख हैं ।

हिन्दुओं में वर्ण-विभेद के कारण कितने ही निम्न वर्ग समाज में सम्मान नहीं पाते थे । उनको नीचा समझा जाता था । उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था । संत कबीर ने ऊंच-नीच के विचारों की आलोचना की और उन्हें निस्सार बताया ---

"हम तुम माहें एक लोहू-एकै प्रान जीवन है मोहू ।
एक ही बास रहै दस मासा, सूता पाता एकहि आसा ।।
एक ही जननी जन्या संसारा, कौन ग्यान थैं भये निनारा"।।[313]

संत कबीर ने युग-युगान्तर के सताए गए समाज को उठाया और अन्य वर्गों के समान ही सम्मानित होने की बात कही । संत कबीर की ओजस्वी वाणी ने इन वर्गों में भी आत्म-सम्मान तथा आशा, जागृति की लहर प्रवाहित की । सम्मानपूर्वक शारीरिक श्रम करते हुए जीवन-यापन करने तथा सर्वांगीण उन्नति करने का विश्वास उनमें उत्पन्न किया। संत कबीर के विचारों से अनुप्राणित होकर उनके दार्शनिक सिद्धान्तों तथा विचारों का प्रसार-प्रचार हुआ, जिससे समाज का भारी हित हुआ ।

---

313. कबीर ग्रन्थावली , पृष्ठ - 244

जीवन-के सभी क्षेत्रों को संत कबीर ने संवारने का प्रयास किया। विषमता अथवा असमानता संत कबीर से देखे नहीं बनती थी। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक अथवा साहित्यिक कोई भी क्षेत्र हो संत कबीर ने सब क्षेत्रों में विषमता को मिटाने और समरसता को प्रतिष्ठित करने का जीवनपर्यन्त प्रयास किया है। द्वैत भाव का नाश तथा अद्वैत भाव की प्रतिष्ठा तथा एकत्व की सिद्धि उनके जीवन का चरमलक्ष्य बन गया था।

गुरु रविदास ने भी तत्कालीन युग में प्रचलित सम्पूर्ण साधना पद्धतियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप ऐसी सर्वांगीण पद्धति दी थी, जिसमें प्रत्येक विचारधारा का लाभकारी स्वरूप समाविष्ट था। उसका हानिकर या अधिक वैधी रूप तथा वाह्याचरण पूर्णरूपेण बहिष्कृत कर दिया गया। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में गुरु रविदास जी की विचारधारा ने सामाजिक पुनर्व्यवस्थापन के उस युग में एकमात्र अस्त्र धार्मिक चिंतन को समन्वित एवं सरलतम रूप में प्रस्तुत करने के कार्य को आगे बढ़ाया। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनकी अन्तर्पीड़ा अनेक स्थलों पर फूट-फूट पड़ी है। किन्तु उनकी अभिव्यक्तियों में एक सन्त का सन्तोष एवं भक्त का धैर्य था न कि एक राजनीतिक का जोश और फटकार की भाषा।

तत्कालीन विभिन्न संप्रदायों और सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य में गुरु रविदास जी के विषय में पूर्व जन्म में उनके ब्राह्मण होने की जो धारणा विकसित हुई उसके पीछे जहां अन्य दृष्टिकोण हो सकते हैं वहां एक यह भी दृष्टि हो सकती है कि वे अपने काल में इतने अधिक सम्मानित, पूज्य और धर्मक्षेत्र में अग्रणी माने जाने लगे थे कि उन्हें

सामान्य लोक-दृष्टि, तत्कालीन युग में ब्राह्मण से कम मानने को तत्पर नहीं हो सकती थी। वे जन्म से अथवा पूर्व-जन्म में ब्राह्मण रहे हों या न हों, किन्तु इतना निश्चित था कि उनका कर्म और यश किसी भी ब्राह्मण से अधिक था और इसीलिए उन पर इस दृष्टि का आरोप हो गया।

काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों से परे रह कर अभिव्यक्ति से श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करने वाले संत कबीर की अपेक्षा गुरु रविदास जी जैसे अनेक सन्तकवि भी हिन्दी काव्यधारा से कटे रहे। सन्त कबीर और गुरु रविदास समकालीन ही नहीं अपितु गुरु भाई भी रहे और अधिकांश यात्राओं एवं गोष्ठियों में साथ-साथ रहे। संत कबीर स्वभावत: उग्र, अक्खड़ तथा निडर व्यक्ति थे तथा सबको खरी-खोटी सुनाने वाले निर्गुणोपासना के प्रखर प्रचारक संत थे। इसके विपरीत गुरु रविदास अपनी शान्त शीतल प्रकृति के थे और कभी भी निर्गुणोपासनापरक विचारधारा का तीव्र विरोध नहीं किया। गुरु रविदास के काव्य में परमतत्त्व और उसके स्वरूप का, ब्रह्म जीव की अभिन्नता का, तथा माया का मिथ्यात्व का विस्तृत प्रतिपादन तथा संत कबीर-वाणी और गुरु रविदास वाणी में लक्षित एतद्विषयक अपूर्व साम्य की स्थिति गुरु रविदास जी की प्रौढ़ दार्शनिक दृष्टि के साथ उनके कविरूप को भी उजागर करती है। पुस्तकीय शास्त्र-ज्ञान से परे रह कर भी सत्संगजन्य श्रुतज्ञान के माध्यम से गृहीत विभिन्न दार्शनिक मतवादों के सारतत्त्वों का अद्भुत संयोजन इनकी रचनाओं में मिलता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु रविदास ने ब्रह्म के अव्यक्त और निर्गुण स्वरूप की प्रतिष्ठा की है।

गुरु रविदास जी का ब्रह्म अनिर्वचनीय है। दार्शनिक दृष्टि से उसे अद्वैत - विशिष्टाद्वैत आदि कोटियों में नहीं रखा जा सकता।

वस्तुत: संतों ने उसे बौद्धिक या तार्किक पद्धति का आधार प्रदान नहीं किया। अत: इस दृष्टि से उसकी उचित व्याख्या भी नहीं हो सकती। गुरु रविदास के ब्रह्म पर विचार करते हुए हमने देखा कि वह न केवल इन्द्रियातीत है, अपितु वह तो निर्गुण-सगुणातीत भी है। वह केवल अनुभूति का विषय है। इसीलिए उसके स्वरूप और गुणों की अन्यान्य व्याख्याओं के बाद भी कोई संत सन्तुष्ट नहीं हुआ कि वह समाज के लिए ब्रह्म के रूप का स्पष्टीकरण कर सका है।

उसका गुणगान करते-करते 'सुर' नर, मुनि जन का तो कहना ही क्या स्वत: ब्रह्म तक थक गए, लेकिन अनन्त का कोई अन्त न पा सके। ब्रह्म की 'नेति परक' व्याख्या भी यहां मिलती है। उसे सर्वत्र, सर्वव्यापक, सर्वनियंता, सर्वान्तर्यामी आदि स्वीकार कर चुका है। मूलत: निर्गुण वह अनिर्वचनीय है, लेकिन गुणों के माध्यम से जब उसके स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है तो वह सगुण निराकार रूप ग्रहण कर लेता है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी का प्रसार है, लेकिन वह स्वत: अविकृत और निर्लिप्त रहता है। सृष्टि का एकमात्र उपादान और निमित्त कारण है। सन्तों की दृष्टि में सृष्टि मिथ्या नहीं, यह सत्य है क्योंकि सत्य ब्रह्म का ही प्रसार है। सृष्टि का प्रत्येक प्राणि भी उसी तरह सत्य है। वस्तुत: आत्मा और परमात्मा में उन्होंने अंशांशी

सम्बन्ध को स्वीकार किया है। जीव में ब्रह्म के सब गुण है, उन्हें वह विकसित कर ब्रह्म से तादात्म्य और ऐक्य स्थापित कर अपने व्यक्तित्व को उसमें तिरोहित कर सकता है। यह जीव के जीवन का लक्ष्य या साध्य है, जो प्राप्त करना दुष्कर है। परन्तु गुरु रविदास जी ने मानव को सदा इसके प्रति सतर्क किया है और इसे प्राप्त करने की प्रेरणा भी दी है तथा मार्ग भी बताया है। इस भेद के आभास का कारण सर्पिणी माया को बताया है। वस्तुत: माया ही जीवन को भरमाकर इस संसार के प्रलोभनों में फंसा देती है और उसे लक्ष्य से पथ-भ्रष्ट कर देती है। इन्द्रियों के वश में होने के कारण जीव मूलत: कंचन और कामिनी का शिकार हो जाता है। लौकिक समृद्धि की चाह उसे सब प्रकार के दुष्कर्मों को उभारकर उसका चित्त मलिन कर देती है। गुरु रविदास जी ने इसका विरोध नहीं किया, अपितु परिहार ही किया है। भरमाने वाली माया से जीव को सतर्क करते हुए उन्होंने अनावश्यक धन-संग्रह को जहां बुरा बताया है, वहां पूर्णत: कामिनी में लिप्त हो जाने की भी निन्दा की है। परन्तु धन और स्त्री को न छूने वाले साधुओं में से वे न थे। अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए उन्होंने लौकिक और पारलौकिक जीव में अद्भुत संतुलन स्थापित किया हुआ था। भावात्मक आवेश में गुरु रविदास जी ने अपनी विचारधारा का परित्याग नहीं किया था। यही उनके व्यक्तित्व की महानता थी। वस्तुत: जहां एक ओर गुरु रविदास जी ने माया-लिप्त हो धन-संग्रह का विरोध किया था वहां अकर्मण्य जीवन का भी उतना ही शक्तिपूर्ण विरोध किया था। इसी प्रकार गृहस्थ में लिप्त गृहस्थियों और पलायनवादी साधुओं पर दोनों का ही उन्होंने विरोध किया था। सब पूछा जाये, तो इसी से इनके 'सहजपथ' का निर्माण हुआ है। प्रकृति के स्वाभाविक नियमों को उन्होंने सहज रूप से अपनाया और क्रियात्मक जीवन के माध्यम से जन-समाज को अपनाने का संदेश दिया है

यह युग अन्तर्विरोधों का युग था। ज्ञानियों के शुष्क ज्ञान ने उनके अहंकार को जागृत किया था, पर उनका बौद्धिक संतोष न कर सका था। गुरु रविदास जी ने ज्ञानाधारित सत्यों को वहां तक अपनाया, जहां तक वे जीवन बोझिल न बनाने वाले सिद्ध हुए। ज्ञान को अपनाए बिना उसकी बात करने वालों को उन्होंने धिक्कारा है। इसीलिए वेद-इत्यादि पुस्तकीय विद्या की निन्दा नहीं की अपितु समझे बिना अपनाने का राग अलापने वालों को आड़े हाथों लिया है। उनकी कृतियों में कहीं-कहीं पुस्तकीय विद्या का विरोध भी प्रतीत होता है, उससे भी मूल भाव उसके ज्ञान को न अपनाने वालों का ही विरोध है।

जन समाज में विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से प्रसारित होने वाली भक्ति में उन्होंने भाव का अभाव पाया। इसीलिए भक्ति के बाह्य आवरण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंच गये। परन्तु उनकी आन्तरिक शक्ति क्षीण होती गई। गुरु रविदास जी ने भावहीन आवरणों और आडम्बरों का जी भरकर विरोध किया। गुरु रविदास जी ने मूर्ति-पूजा करने वालों के अन्तर में बैठी हुई मूर्ति से परिचय कराया, मंदिर जाने वालों को मन-मंदिर की याद दिलाई। 'कर का मनका' फेरने वालों को 'मन का मनका' ला पकड़ाया। तीर्थों के भ्रमण करने वालों को सत्गुणरूपी तीर्थ के दर्शन करवाये, गंगा स्नान करने वालों को अन्तः स्नान का पाठ पढ़ाया, व्रत रखने वालों को वास्तविक व्रत का महत्व समझाया। इन आवरणों के माध्यम से भक्ति अपनाने में प्रयत्नशीलों को भक्ति के मूल तत्व भावपूर्ण 'नाम' का वरदान दिया। इस प्रकार भक्ति का भी उन्होंने विरोध नहीं किया। उसे परिष्कृत रूप प्रदान कर सहज और स्वाभाविक बना दिया ताकि जन-सामान्य भावपूर्ण हृदय से बिना किसी आडम्बर के उसे अपना सकें।

गुरु रविदास जी ने जटिलता का विरोध कर उसे सहजरूप में अपनाया। उन्होंने देह को विकृत साधनाओं के माध्यम से उसे अनावश्यक रूप से कष्ट सहिष्णु बनाने का खुलकर विरोध किया है। इनकी अष्टांग साधना इसी सहज-साधना का क्रियात्मक परिचय देती है।

भारतीय साधना पक्ष में ज्ञान योग भक्ति तथा कर्ममार्ग की चारों धारायें अलग-अलग प्रवाहित हो रही थी। इनमें भी परस्पर भेद बुद्धि उत्पन्न हो कर नानात्व का सृजन होता था। संत कबीर ने चारों को एक दूसरे का सहायक और पूरक बताया। जीवन की सफलता के हेतु चारों मार्गों का एकीकृत रूप प्रत्येक साधक के लिए अंगीकार करना अनिवार्य बताकर साधना-पक्ष में एक मौलिक देन थी।

साधना द्वारा मन केन्द्रित हो जाने पर, हृदय परिशुद्ध हो जाने पर, भाव-जगत निर्मल हो जानेपर सब विकार भाग खड़े होते हैं। साधक में साम्य दृष्टि समदर्शिता का प्रादुर्भाव हो जाता है। उसे अब सब प्राणियों में अपना ही स्वरूप दिखाई पड़ने लगता है। वह गद्गद् हो कर कहता है ---

'एते औरत मरदां साजे, ये सब रूप हमारे।
कबीर पंगुरा राम अलह का, सब गुरु पीर हमारे।।'[314]

साधक सभी के साथ प्रेम और सहानुभूति के साथ सद्व्यवहार करता है और परमानन्द की प्राप्ति करता है --

---

314. कबीर ग्रन्थावली, पृ0 - 267

"आपा पर सब एक समान, तब पाया हम पद निरवान"। 315

सब में अपना स्वरूप देखना ही मुक्ति है। बंधन होता है मन के विकारों में, आसक्ति ही बंधन है। जब मन निरासक, निर्विषयी, निस्संग हो जाता है, फिर बंधन का उच्छेद हो जाता है। फिर तो मुक्त दशा है। साधक अपने मुक्त स्वभाव को प्राप्त हो जाता है और मुक्त स्वभाव, स्वाधीन स्वभाव ही प्रेमपय है, आनन्दमय है तथा कल्याणमय है। इस दशा में दुख का अन्त हो जाता है और चिर सुख व शांति की उपलब्धि हो जाती है साधक को।

संत कबीर और गुरु रविदास जी ने जीवन-पर्यन्त समष्टिगत साधना का प्रयत्न किया। संत कबीर की साधना का लक्ष्य है द्वैत भाव का नाश करना। समाज में यही भेद-भावना सब उत्पात खड़ा कर देती है। कोई धन के नशे में चूर, दूसरे को दीन-हीन समझ कर असद्व्यवहार करता है तो कोई हिंसक बना हुआ रात-दिन हिंसा करता है, कोई अपने को ऊंच कह कर दूसरे को नीच कहता है और उसके साथ घृणा का व्यवहार करता है।

संत कबीर ने समाज से आर्थिक असमानता आदि सभी असमानताओं को जड़-मूल से मिटाने का प्रयत्न किया। उन्होंने दूसरों को भी लोक कल्याण करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार उनकी साधना-पद्धति में व्यष्टि तथा समष्टि साधना का समावेश है। उनकी साधना दोनों के लिए ही उपयोगी है।

---

315. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ - 144

संत कबीर के दार्शनिक पक्ष में अपने दर्शन के माध्यम से विश्व को कई अमूल्य शिक्षायें दी हैं --

इस विश्व के मूल में सत्ता अवश्य है। उस सत्ता का कोई एक रूप, एक नाम, एक स्वभाव बताया नहीं जा सकता। वह हमारी इन्द्रियों तथा बुद्धि की पहुंच के परे है। तर्क-वितर्क के झमेले में न पड़कर स्वानुभूति तथा सहजानुभूति के द्वारा उसे विश्व के कण-कण में अनुभव किया जा सकता है। सभी प्राणियों तथा सकल विश्व में उसे व्याप्त समझ कर उसके प्रति श्रद्धा, आस्था और प्रेम भाव रखो। उसकी कृति सकल विश्व के प्राणियों के प्रति प्रेम, सहानुभूति और सद्व्यवहार करो, यही उसकी सच्ची भक्ति है।

मूलतत्व, हमारा जीवात्मा और प्रकृति के विविध नामरूप, मूलत: एक ही है। तात्विक दृष्टि से उसमें कोई भेद अथवा अन्तर नहीं है। जो भेद हमें दिखाई पड़ता है, वह हमारे भ्रम, अज्ञान, संशय अथवा अविद्या के ही कारण है। जैसे अंधकार में पड़ी हुई रस्सी को सांप समझ लिया जाता है और प्रकाश होते ही रस्सी, उसी भांति अज्ञान से विभेद है और ज्ञान से अद्वैत की सिद्धि होती है।

अज्ञान, अविद्या, संशय, भ्रम, भेद बुद्धि सब माया है। माया का जादू किसी को नहीं छोड़ता। माया ने ही सब दुखों का पाश प्राणी के लिए फैला रखा है। साधना से माया का निराकरण हो जाता है।

साधना के लिए योग्यतम तथा अनुभवी सद्गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। गुरु के वचनों पर विश्वास करना चाहिए। गुरु-सेवा तथा साधुजन सेवा को कर्तव्य समझ कर निष्काम भाव से सेवा और साधना करनी चाहिए।

कोरे पोथी ज्ञान से काम नहीं चलता। सुनी-सुनाई बातों पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। अपने विवेक से काम करना चाहिए। अपने अनुभव की कसौटी पर हर बात को कसना चाहिए, परखना चाहिए और ठीक जंचने पर ही, निष्काम भाव विवेक-बुद्धि से जो सत्य और उचित समझ पड़े उसी के अनुकूल कार्य करना चाहिए।

संत कठोर साधना और बाह्योपचार, आडम्बरपूर्ण साधना तथा पाखंड की सभी पद्धतियों से दूर रहना चाहिए। सभी प्रकार के आडम्बर भ्रमात्मक, निस्सार तथा व्यर्थ होते हैं। अपनी सहजवृत्ति, अपने सहजभाव को साधना द्वारा जगाना चाहिए। सहजभाव की उपलब्धि के उपरांत ही लोक कल्याण के कार्यों में लगा जा सकता है।

मन अत्यन्त चंचल है। हमारे सभी दुख-संताप का यही कारण है। काम, क्रोध, मोह-माया आदि सब मन के खेल हैं। माया का निवास मन और उसकी वृत्तियों से है। अतएव मन पर अंकुश लगाना चाहिए। इसे अपने वश में करना चाहिए। इसे वश में करने और केन्द्रीभूत करने के लिए साधना करनी चाहिए।

संसार, गृह आदि को नहीं छोड़ना चाहिए। संसार से भागना महान कायरता है। संसार के बीच रह कर, निर्लेप भाव से सभी कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। सच्चे शूरवीर की भांति इसके उत्थान का बीड़ा उठाना चाहिए तथा लोक संग्रहार्थ कार्य में संलग्न रहना चाहिए।

शारीरिक श्रम के महत्व को समझ कर, ईमानदारी के साथ जी तोड़कर परिश्रम करो। दूसरों की मेहनत पर नहीं रहना चाहिए। स्वावलम्बी जीवन ही सुखद होता है। अपनी आवश्यकतानुसार ही वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए, दूसरों की आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। स्वार्थी, लालची, कपटी तथा धोखेबाज बनना अनुचित है, अधर्म है।

अपने ही उपभोग के हेतु संचित धन पाप है, विनाशकारी है। ऐसे धन, सम्पदा, महल व्यर्थ है। ऐश्वर्य का जीवन व्यर्थ है। अनाचारी, व्यभिचारी जीवन का त्याग करना चाहिए। सादा जीवन बिताना चाहिए। आत्म संयम द्वारा चरित्रवान बनकर सभी प्राणियों के हित-साधन में लगना चाहिए।

साम्प्रदायिकता, जाति-भेद, धनवान- धनहीन के भेद, मतमतान्तर के भेद तथा अन्य प्रकार के सभी भेद, जिनसे एक प्राणी दूसरे प्राणी के बीच द्वेषभावना, घृणा और ईर्ष्या उत्पन्न होती है, अनुचित है, दुखदायक है। इन सब भेदों से ऊपर उठना चाहिए। सबको सम-दृष्टि से देखना चाहिए।

जिससे सब का हित हो, आनन्द और प्रेम का विस्तार हो वही सच्चा धर्म है। सभी धर्म समान हैं। अतएव सबकी उत्तम शिक्षाओं को ग्रहण करना चाहिए। उन सद्शिक्षाओं को अपने जीवन में ढालना चाहिए। सभी उत्तमोत्तम बातों का प्रचार करना चाहिए, जिससे सबका हित हो।

सब प्राणिमात्र हमारे ही स्वरूप हैं। जो आत्मा हममें है वही दूसरों में भी है। अतएव हम सब भाई-भाई हैं। सभी को एक दूसरे के कल्याणार्थ निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। निरासक्त, निर्वैर तथा निस्संग भाव से किया गया कर्म शुभ कर्म होगा और उसका फल शुद्ध एवं उत्तम ही होगा।

हम सब मानव हैं। नर-नारायण हैं। हमारा सच्चा स्वरूप नित्य शुद्ध, मुक्त और आनन्दमय है। अपने स्वरूप को पहचानना ही सद्ज्ञान है, भक्ति है, योग है और निष्काम कर्म है। अपना स्वाधीन तथा मुक्त स्वभाव ही मुक्ति है और निर्मम, निरासक्त, निर्वैर, निर्विषय तथा निस्संग होकर जगत्-व्यवहार करना ही मुक्त दशा है।

यह उपयुक्त सार संत कबीर-दर्शन का संदेश है, जिसे अंगीकार करके धन्यभागी बनना परम कर्त्तव्य है।

स्वकर्तव्य कर्त्तव्य का ज्ञान रखने वाले तथा अनुशासित होकर कार्य करने वाले व्यक्तियों के समष्टिरूप को समाज की संज्ञा दी जाती है। गुरु रविदास जी और संत कबीर ने समाज की इकाई व्यक्ति को स्वच्छ, सदाचरणशील, निस्पृह, निस्संग तथा निर्वैर संत के रूप में प्रतिपादित किया है। जिस समाज का व्यक्ति इतना श्रेष्ठ है, वह समाज अवश्य ही श्रेष्ठ होगा।

समाज के अपने नियमोपनियम तथा विधि-विधान होते हैं, जिनके अनुकूल कार्य करने से समाज उन्नतिशील होता है। जब कभी

समाज अपने आदर्श से च्युत हो जाता है तब अनुकूल समाज की व्यवस्था ठीक करने तथा साधुजन के परित्राण के हेतु महान विभूतियों का प्रादुर्भाव होता है ।

संत कबीर और गुरु रविदास जी एक विभूति थे । संत कबीर ने समाज के सम्मुख भावी समाज का स्वरूप प्रस्तुत किया तो गुरु रविदास ने 'बेगमपुरा' की कल्पना की । उनके दर्शन के अनुकूल समाज भेद-विभेद, वर्ग-विहीन, वर्ण-विहीन ही होना चाहिए ।

सबमें वही व्याप्त है, उसी में भेद-भाव करके अलग नाम रख कर उसके विषय में व्यर्थ का झगड़ा करना मूर्खता है । वह ब्राह्मण है, उच्च है, शूद्र है, नीच है, ब्राह्मण शूद्र से घृणा करता है उसके साथ दुर्व्यवहार करता है । इन संतों ने जाति-पांति के विरुद्ध आवाज उठायी ।

भेद-विभेद, वाह्योपचार, आडम्बर और पाखंड के कारण भी समाज में विग्रह घर कर लेता है । आडम्बरपूर्ण जीवन के पीछे, शुद्ध, पवित्र जीवन लुप्त हो जाता है । कोई मूर्ति-पूजा करता है, दूसरा उसे बुरा बता कर परस्पर झगड़ा करने में लुप्त हो जाता है । कोई मूर्ति पूजा करता है तो कोई व्रत-उपवास, कोई प्रयाग तीर्थ जा रहा है तो कोई काबे की ओर मुंह करके पूजा करता है, कोई रोज़ा रखता है कोई मन्दिर में घंटे बजाता है, तो कोई मस्जिद में बांग देता है, तो दूसरा पश्चिमाभिमुख हो कर नमाज़ पढ़ता है । इन वाह्योपचारों को लेकर एक भारी-सी खाई उत्पन्न हो जाती है । पारस्परिक कलह, झगड़े होते हैं, घृणा-द्वेष का बोलबाला होता है और समाज अवनति की ओर उन्मुख हो जाता है ।

उन्होंने मस्मलेपन, स्नान, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, तप-जप, कायाकष्ट का विरोध करके सच्चे धर्म को अंगिकार करने की शिक्षा दी ।

हम सब एक हैं फिर यह भेद-विभेद जो व्यर्थ के बाह्योपचारों के कारण उत्पन्न हो गया है इसका परित्याग करके सब परस्पर मिल-जुल कर एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहो, लोककल्याणार्थ कार्य करो ।

भेद-विभेद हीन, वर्ग-विहीन, वर्ग विहीन समाज की भावी कल्पना से ही सुख-समृद्धि का आभास हो जाता है । ऐसे समाज में दुख का लवलेश भी न रहेगा । वह सुख और आनन्द मिलेगा जो किसी को भी नहीं मिलता । संत कबीर के शब्दों में -- 'इहु सुख ते सिधु ब्रह्म हिराना, सो सुख हमहु साच करि जाना ।'[316] फिर सुख की प्राप्ति होगी जिस सुख को महान साधक और देवता भी नहीं पा सके थे वह सुख है सुव्यवस्थित समाज में रह कर स्वकर्तव्यों का पालन करते हुए, लोककल्याण की भावना से, निस्संग, तथा निष्काम भाव से परहित साधन में संलग्न रहना ।

सच पूछा जाय, तो उन्होंने एक बार फिर ज्ञान, भक्ति और कर्म की एकांगिता का विरोध कर तीनों का उचित समाहार कर समन्वित जीवन दृष्टि प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया । इस प्रकार धर्म पराङ्मुख होती हुई जनता को एक बार फिर धर्मोन्मुख किया । इस कार्य में उनका सबसे बड़ा सहायक सिद्ध हुआ सत्गुरु । गुरु रविदास जी

---

316. कबीर ग्रंथावली - पृष्ठ -27

ने इस बात को समझ लिया था कि अज्ञानी गुरुओं ने ही भोली-भाली जनता को पथभ्रष्ट किया हुआ है। इसीलिए उन्होंने सत्गुरु की बड़ी कठिन कसौटी रख दी, लेकिन इसके साथ-साथ उसका महत्त्व भी अत्याधिक बढ़ा दिया। सत्गुरु वही हो सकता है, जिसने खुद मार्ग पा लिया हो और जो संसार से ऊपर उठ चुका है, अब जिसे केवल लोककल्याण की लगन है। इसीलिए उसका महत्त्व साध्य से भी अधिक हो गया। क्योंकि इस साधन के बिना साध्य की प्राप्ति संभव नहीं। सत्गुरु ने समाज को सत्कर्म का महत्त्व बताया। बिना सत्कर्मों के मानव का वह धरातल ही नहीं बन पाता, जहां वह पारलौकिक जीवन की बात सोच सके। सत्कर्मों के माध्यम से मानव इतना औचित्य-परक बन जाता है कि 'नाम' प्राप्त करने का अधिकारी बन सके। सत्गुरु का सबसे बड़ा 'वरदान' नाम है। सांसारिक जीव इस नाम के सहारे ही उस दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ता है। क्योंकि मूर्ति आदि उसके प्रतीक स्वरूप हैं। और कोई साधन जीव के पास नहीं है। इस 'नाम' में अनन्यता, एकाग्रता और अनवरत तल्लीनता भक्त को सफलता प्रदान करने वाले विशिष्ट तत्व हैं।

'नाम' कोई भी हो उसका महत्व उतना नहीं, जितना उसमें निहित भाव का। नाम तो उस भाव को जागृत रखने का एकमात्र साधन है। सत्गुरु और नाम को अर्जित नहीं किया जा सकता, यह तो भगवत्कृपा से प्राप्त हो सकता है। यह भगवत्कृपा कब प्राप्त हो कोई नहीं जान पाता। व्यक्ति भावपरायण हो कर सत्कर्म करते चले, यदि उसके विश्वास में बल होगा, निश्चय में दृढ़ता होगी,

भक्ति में अनन्यता होगी, तो कोई समस्या शेष नहीं रह जाती। संतों ने एक स्वर से ही भगवत्कृपा को सर्वप्रधान साधन स्वीकार किया है। सत्कर्म, सत्संगति, सतगुरु आदि इसके लिए उपयुक्त वातावरण का सृजन कर सकते हैं इससे अधिक कुछ नहीं।

अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने आलंकारिक चमत्कारमयी वाणी का आश्रय नहीं लिया, अपितु भाषा की सरलता, स्पष्टता और शक्तिमत्ता ने ही उन की शैली को साहित्यिकता प्रदान की है। न उनके मन में, न उनकी विचारधारा में किसी प्रकार का दुराव-छिपाव था, और न ही अभिव्यक्ति में वक्रता। उनके सीधे-सादे परन्तु सशक्त व्यंग्यों में आडम्बरवादियों को तिलमिला देने की अद्भुत सामर्थ्य थी। वही उनकी अभिव्यक्ति की शक्ति है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी वाणी में नम्रता नहीं है। भगवान के सम्मुख उनकी विनयिता की हद होती है। उनका अपना तो अस्तित्व ही नहीं रह जाता। वस्तुतः उनकी अभिव्यक्ति को उनकी विचारधारा नहीं, भावधारा पालती रही है, इसी से वह सहज, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक बन सकी है। उनकी वाणी सीधा जन-मन को प्रभावित करती है, इससे बढ़कर उसकी निश्छलता का प्रमाण हो ही क्या सकता है ?

गुरु रविदास जी की संत भावना किसी संप्रदाय विशेष में आबद्ध नहीं हुई, इसीलिए अन्यान्य सम्प्रदायों के माध्यम से इस एक ही भावना का विकास होता जा रहा है। यह मानवीय धरातल पर विकसित हुई है। किसी भी धर्म, कर्म, अर्थ और जाति के वर्ग का व्यक्ति इसे अनायास ही अपना सकता था। वह जब चाहे इसका

त्याग भी कर सकता था। यहां किसी प्रकार का बन्धन न था। जाति या वर्ग से बहिष्कृत करने की आवश्यकता न थी। गुरु रविदास जी की मान्यताओं का धरातल बहुत व्यापक था। वस्तुत: उनकी मान्यताओं की आधारभूमि एक ही थी। अत: उन पर जिस क्रियात्मक जीवन या जीवन-दर्शन का विकास हुआ उसके मूल तत्वों में कोई अन्तर न आया, यही इस भावना की स्वाभाविकता है। कृत्रिम क्रियाकलापों को इसमें स्थान न देकर संतों ने इसे विशिष्ट नहीं होने दिया। बाह्य आवरणों, आडम्बरों या कर्म-काण्डों के अभाव ने इसे भाव-प्रधान बना रहने में सहायता की। इस प्रकार संकीर्णता के आधार-स्तम्भों के अभाव में इसे कम विरोध सहना पड़ा। इसे भी शक्ति प्रदान की। समाज के किसी भी वर्ग से आने वाले व्यक्ति ने इसे सहर्ष अपनाया, यदि नहीं भी अपनाया तो कम-से-कम इसका विरोध तो नहीं किया। इस प्रकार प्रत्येक युग के चरित्रवान व्यक्तियों का आश्रय पाकर यह सशक्त होती गई।

संत कबीर और गुरु रविदास जी के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् यह स्वयं स्पष्ट होने लगता है कि उसके मूल उत्स दो थे -- अलौकिक प्रतिभा और सत्यानुभूति। इन्हीं दोनों का स्वर्ण और सुगंध सहयोग पाकर उनकी वाणी थिरक उठी थी। उन्होंने अपना सारा जीवन सत्यान्वेषण एवं सत्य के प्रयोगों में व्यतीत किया था। जिन सत्य खण्डों की अनुभूति उन्हें गूढ़ चिन्तना और विचारात्मकता के माध्यम से होती थी, उनकी प्रतिभा उन्हें शब्दमय रूपों में एक विचित्र सौन्दर्य के साथ व्यक्त कर देती थी। शाश्वत सत्य तत्व ही आत्म तत्व है। संत कबीर की प्रतिभा ने उसी की मधुमयी गाथा तो गाई है। इन अमूल्य सत्य ग्रन्थों की अनुभूति के बीच-बीच में उन्हें जो भी मिथ्या तत्व

और आडम्बर के असत्यमय उपल शक्ल मिले उन्होंने उनको जो खोलकर ठुकराया है। संत कबीर और गुरु रविदास जी की क्रांति भावना ने उनकी विचारधारा में एक ऐसा प्रवेग भर दिया था जो भारतीय साहित्य में क्या सम्भवत: विश्व साहित्य में खोजने से भी न मिलेगा। इन कवियों की इन्हीं सब विशेषताओं को पाकर उनकी विचारधारा इतनी महत्वशालिनी हो उठी है।

प्रतिभा की विभिन्न शक्तियों के साथ-साथ संत कबीर और गुरु रविदास जी के विचारों में वस्तुओं के अनुशीलन की अद्भुत शक्ति थी। बार-बार कहा जा सकता है इन संत कवियों का जीवन सत्य के प्रयोगों में बीता था। जीवन और जगत में जो कुछ भी उनके सामने आया उसे उन्होंने कभी उसी रूप में ग्रहण नहीं किया। उनका यह नियम था कि वे प्रत्येक बात पर विचार करते थे। उसका अनुशीलन करते थे, फिर जब उसे वे ग्राह्य समझते तो आत्मसात कर लेते थे। किन्तु जिन बातों को असत्य, मिथ्या और आडम्बर रूप समझते थे उनका वे डटकर विरोध करते थे। उनके सामाजिक विचार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संत कबीर और गुरु रविदास जी की विचारधारा के अध्ययन से पता चलता है उनके व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी गुण व्याप्त थे। यह भावना कुछ तो संस्कारों का परिणाम थी और कुछ युगीन परिस्थितियों की देन थी। जिस समय इन संत कवियों का आविर्भाव हुआ उस समय देश में अनेक धार्मिक मत और साधनायें प्रचलित थीं। इन सभी में बाह्याडम्बरों की प्रधानता थी। प्रारम्भ से ही इन में आडम्बरों की प्रतिक्रिया का भाव था। इस प्रतिक्रिया का भाव उनकी विचारधारा के सभी क्षेत्रों में पाया जाता है।

संत कबीर और गुरु रविदास की वाणी वास्तव में आत्मा की कला ही है तभी तो उसमें गूढ़ आध्यात्मिकता, अक्षय आनन्द और अनन्त कल्याण भावना भरी हुई है। सच तो यह है कि उसमें अलौकिक अमृत्व भरा हुआ है। इसी अमरत्व को पाकर निष्प्राण होती हुई मध्ययुग की भारतीय जनता एक बार फिर जीवन और ज्योति से जगमगा उठी थी।

संत कबीर और गुरु रविदास जी दोनों ही मूलतः भक्त हैं और भक्ति में किसी प्रकार के बाह्याचार को स्थान नहीं देते। भाव-भक्ति को प्रधानता देते हुए उनका कविरूप उजागर हुआ है और अधिक निखर कर सामने आया है। साधक रूप ही इनके व्यक्तित्व का आकर्षक अंग रहा है। गुरु रविदास जी का यह रूप संत कबीर जैसा ही है। सामाजिक विचारधारा में गुरु रविदास वाणी को उतनी प्रखरता नहीं मिल पायी जैसी संत कबीर-वाणी में मिलती है, क्योंकि गुरु रविदास जी के स्वभाव में वैसी अक्खड़ता नहीं है जैसी संत कबीर वाणी में मिलती है। विचारधारा की दृष्टि से अपूर्व साम्य होते हुए भी दोनों की शैली में अन्तर है। अपने क्रान्तिकारी स्वरूप में जहां संत कबीर उग्र और ओजस्वी बन जाते हैं, वहीं गुरु रविदास जी सदैव विनय और मधुर भाव से ओत-प्रोत रहते हैं। आत्म विश्वास, साहस, स्वतन्त्रता और निष्पक्ष भाव अपनाकर इन संतों ने जो भाव-ज्योति प्रज्ज्वलित की है, वह आद्यान्त प्रकाशवान् हो रही है।

इस प्रकार संत कबीर और गुरु रविदास नवयुग का निर्माण करने वाले भारत की अन्यतम विभूति थे। मध्यकालीन सोये हुए युग को जगाने का श्रेय उन्हीं को है। हताश भारत को हाथ पकड़ कर उन्होंने ही उठाया था। उन्हीं की अलौकिक प्रतिभा को पाकर साहित्य थिरक उठा था। उन्हीं की अनुसंदेश से मृत-प्राय हिन्दू समाज जीवन-ज्योति से जगमगा उठा था। उनके ही विचार अनुभूति के संसर्ग से उच्चतम दर्शन की प्रसूति हुई है। उनके ही पावन हृदय से भक्ति की अलौकिक धारा बही थी, जिसके स्पर्शमात्र से आज भी जड़-चेतन तन्मय हो उठते हैं।

सहायक -पुस्तक -सूची

हिन्दी

1. अर्जुन देव (गुरु) - गुरु ग्रन्थ साहिब
गुरुद्वारा रकाबगंज प्रबंधक कमेटी, दिल्ली

2. अनन्तदास - अनन्तदास की परिचई

3. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' - कबीर - वचनावली
सं0 - 2015

4. आर्य प्रसाद त्रिपाठी (डा0) कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन,
सरोज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978

5. एन0 सिंह (डा0) - सन्त कवि रैदास, मूल्यांकन और प्रदेय
286/ नया आवास-विकास, दिल्ली रोड,
सहारनपुर -1983

6. कबीर (सन्त) - कबीर साहेब का बीजक
बेलवेडियर प्रेस, 13 मोतीलाल नेहरु रोड,
इलाहाबाद -1970

7. कबीर (सन्त) - अनुराग - सागर
बेलवेडियर प्रेस, 13 मोतीलाल नेहरु रोड,
इलाहाबाद - 1970

8. कबीर (सन्त) - कबीर-साखी संग्रह भाग-1-2
बेलवेडियर प्रेस, 13 मोतीलाल नेहरु रोड,
इलाहाबाद -1970

9. " - कबीर - चरित्र बोध
बम्बई, संवत - 1671

10. कला शुक्ला - सन्त रैदास
विद्या प्रकाशन मंदिर, दरियागंज, नई दिल्ली, 1974

11. के० एन० उपाध्याय - गुरु रविदास
राधा-स्वामी सत्संग, व्यास, 1982

12. गोपाल जी स्वर्ण किरण (डा०) - सन्त रविदास और उनका काव्य
समकालीन प्रकाशन, वाराणसी, 1970

13. गोविन्द त्रिगुणायत (डा०) कबीर की विचारधारा
साहित्य निकेतन, कानपुर, 1952

14. " - हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि
साहित्य निकेतन, कानपुर, 1961

15. गणपति चन्द्रगुप्त (डा०) साहित्यिक निबन्ध
लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद, 1960

16. " - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद 1967

17. चन्द्रबली पाण्डेय (डा0) - कबीर का जीवन-वृत्त

राजकमल प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली, 1967

18. " " - सूफीमत साधना और साहित्य

विद्याश्रम शोध संस्थान, संवत् - 2011

19. चन्द्रदेव राय (डा0) - कबीर और रैदास-एक तुलनात्मक अध्ययन

सौहार्द प्रकाशन, मुंशीपुरा, मऊनाथ-भंजन, आजमगढ़, सन् -1978

20. चन्द्रिकाप्रसाद सिंह 'जिज्ञासु' - सन्त प्रवर रैदास साहित्य

360/163, मातादीन रोड, लखनऊ -3, संवत् - 2035

21. जगवीर सिंह (सन्त) - सन्त रविदास महात्म्य

श्री रविदास सन्त आश्रम, आसरा मण्डल, मेरठ, 1971

22. जसवीर सिंह साबर - भगत रविदास स्तोत पुस्तक

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय प्रेस, अमृतसर, सन् - 1970

23. धर्मपाल मैनी (डा0) - कबीर के धार्मिक विश्वास

ई-152, सैक्टर - 14, चण्डीगढ़ -3, 1964

24. धर्मदास मैनी (डा0) - रैदास

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1974

25. " " - मध्ययुगीन निर्गुण चेतना

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद , 1972

26. धर्मपाल सरीन (डा0) नीच ते ऊंच कियो मेरे सतिगुरु

एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 , रामनगर, नई दिल्ली-197

27. पारसनाथ तिवारी (डा0) - कबीर

नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली-1967

28. " " - कबीर ग्रन्थावली

प्रयाग , 1961

29. परशुराम चतुर्वेदी (आचार्य) - कबीर साहित्य की परख

लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संवत - 2011

30. " " - सन्त साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत

राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-1975

31. " " - उत्तरी भारत की संत परम्परा

भारती भण्डार, प्रयाग, 1972

32. पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव (डा0) - कबीर साहित्य का अध्ययन

साहित्य रत्नमाला कार्यालय, 20 धम्मकूप, बनारस, संवत - 2008

33. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल (डा०) - हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1969

34. पृथ्वी सिंह आज़ाद - (आचार्य) सं० युगप्रवर्तक संत गुरु रविदास
दीपक पब्लिशर्स, माई हीरां गेट, जालन्धर, 1983

35. " " - रविदास
नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 1982

36. " " - रविदास दर्शन
श्री गुरु रविदास संस्थान, 1178/22 बी, चण्डीगढ़, 1973

37. " " - रविदास दर्शन
दीपक पब्लिशर्स, माई हीरां गेट, जालन्धर, 1983

38. पद्म गुरचरन सिंह (डा०) - सन्त रविदास विचारक और कवि
नवचिन्तन प्रकाशन, न्यू जवाहर नगर, जालन्धर, 1977

39. प्रताप चन्द जैसवाल - भक्ति साहित्य (इतिहास एवं परम्परा)
समीक्षालोक माला प्रकाशन, आगरा - 3, सं०-2035

40. बी० पी० शर्मा (डा०) सन्त रविदास की भक्ति साधना
विश्व भारती प्रकाशन, 1178/22 बी, चण्डीगढ़-1978

41. " " - सन्त गुरु रविदास - वाणी
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली, 1978

42. बी० पी० शर्मा (डा०) श्री गुरु रविदास चरितम्
श्री गुरु रविदास महासभा, चण्डीगढ़, -1976

43. " " - भक्त रत्नावली
विश्व भारती प्रकाशन, 1178/22 बी, चण्डीगढ़, सं० -2089

44. ब्रह्मजीत गौतम (डा०) कबीर काव्य में प्रतीक विधान
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली-6 , सन्-1989

45. भगवत् प्रसाद दुबे (डा०) कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सन् -1939

46. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव' - सन्त साहित्य और साधना
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1969

47. मनमोहन सहगल (डा०) सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण
भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, 1965

48. " " - पंजाब के निर्गुण काव्य के दार्शनिक इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली - सन् 1973

49. मुहम्मद नज़ीर (डा०) कबीर के काव्य - रूप
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971

50. मुंशीराम शर्मा (डा०) कबीर - वचनामृत
कानपुर, सं०-2012

51. रत्न चन्द्र - सन्त रविदास
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, प्रयाग, 1968

52. रामकुमार वर्मा (डा०) संत कबीर
साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् 1974

53. रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 1979

54. राजदेव सिंह (डा०) बौद्धिक कबीर
लोक भारती प्रकाशन, वाराणसी, सन्-1972

55. " " - संतों का भक्ति योग
हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1968

56. रामजीलाल सहायक कबीर दर्शन
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 1962

57. रामरतन भटनागर कबीर साहित्य की भूमिका
साहित्य भवन लिमिटेड, संवत् -2950

58. रामानन्द शास्त्री - सन्त रविदास और उनका काव्य
(स्वामी) वीरेन्द्र पाण्डेय रविदास आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार, सन् -1955

59. रामचरन कुरील - सन्त भगवान रविदास की सत्य कथा
मधुकर मिश्र प्रकाशन, सन् -1950

60. रामखेलावन पांडेय(डा0) मध्यकालीन संत साहित्य
अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1965

61. रामचन्द्र तिवारी - मध्ययुगीन काव्य - साधना
विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, -1962

62. रामनरेश वर्मा (डा0) हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1962

63. रांगेय राघव (डा0)- भारतीय संत परम्परा और समाज
किताब महल, इलाहाबाद, 1965

64. रज्जबदास (सन्त) - सर्वंगी
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् -2035

65. लेहना सिंह - संत सुधा - सार
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, संवत् - 1671

66. वियोगी हरि - संत सुधा सार
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1953

67. विवेक दास - कबीर साहब
कबीर-वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी, -1978

68. विलियम डायर - कबीर की भक्ति - साधना
एकता प्रेस, नई दिल्ली, 1979

69. विद्याधर जोहरापुरकर जैन साहित्य का वृहत इतिहास
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-1981

70. शुकदेव सिंह (डा0) - कबीर - बीजक
नीलाभ प्रकाशन, 5- खुसरो रोड, इलाहाबाद, 1972

71. शिवकुमार शास्त्री (डा0) महामानव रैदास
मंगला प्रकाशन, सैक्टर -५ , आर0 के0 पुरम, नई दिल्ली -1987

72. सरनाम सिंह शर्मा (डा0) - कबीर : व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त
भारतीय शोध संस्थान, गांधी शिक्षण समिति, गुलाबपुरा -1969

73. " " - कबीर एक विवेचन
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-1967

74. संगमलाल पाण्डेय - सन्त रविदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व
साहित्य - वाणी, इलाहाबाद, 1970

75. हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य) कबीर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-1971

76. " " - हिन्दी साहित्य की भूमिका
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-, पटना , 1930

77. हजारी प्रसाद द्विवेदी (आचार्य) — नाथ सम्प्रदाय
काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1962

78. " " - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 1961

79. हरवंशलाल शर्मा (डा0) - भारतीय दर्शन परम्परा और वादि ग्रन्थ
वैदिक शोध संस्थान, गुलाबपुरा, सन् -1965

पंजाबी

80. उषा खन्ना - कथा गोसाईं रविदास जी के समन्वय की
असीम प्रकाशन, जालन्धर, 1984

81. करतार सिंह दुग्गी (डा0) - कबीर
भाषा विभाग, पटियाला, पंजाब, 1972

82. कुलवन्त कौर (डा0) - गुरु ग्रन्थ साहिब विच दरज रविदास बाणी दा आलोचनात्मक अध्ययन
भाषा विभाग, पंजाब, 1972

83. के0 एन0 उपाध्याय - गुरु रविदास
राधा स्वामी सत्संग, व्यास, 1982

84. जोध सिंह (भाई, डा0) कबीर जीवनी ते सिखिया
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला, 1981

85. जमनादास (संत) - सन्त श्री रविदास प्रकाश
सात दरबारी, गुरुद्वारा श्री रविदासपुरा, लुधियाना, 1932

86. दिलीप सिंह (डा0) - साध्न में रविदास सन्त
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1982

87. धर्मपाल सिंह्ल (डा0) संत शिरोमणि रविदास
दीपक पब्लिशर्स, माई हीरां गेट, जालन्धर, 1986

88. " " - प्राचीन जीवन कथा श्री गुरु रविदास जी
पंजाब विश्व विद्यालय, चंडीगढ़, 1986

89. " " - वाणी गुरु रविदास जी
पंजाब विश्व विद्यालय, चंडीगढ़, 1986

90. " " - जसकीरत गुरु रविदास जी
पंजाब विश्व विद्यालय, चंडीगढ़, 1986

91. पाखर सिंह - पतुखता दा चानन मुनारा गुरु रविदास
नवयुग पब्लिशिंग हाउस, आदमपुर, जालन्धर, 1982

92. मनमोहन सहगल (डा0) भक्त रविदास जीवन ते रचना
मन्दीप प्रकाशन, 9/56, मोती नगर, नई दिल्ली

ENGLISH

93. C.W. BRICS - THE CHAMARS
Association Press, 5, Russell Street
CALCUTTA, 1920

94. G.H. WESTCOTT - KABIR AND THE KABIR PANTH
Susil Gupta (INDIA) Ltd., CALCUTTA
-12, SECOND EDITION- 1953

95. ISHWARI PRASAD - HISTORY OF MEDIEVAL INDIA
The Indian Press (PUBLICATIONS)
Pvt. Ltd., ALLAHABAD, 1973

96. MOHAN SINGH (DR.) - KABIR AND THE BHAGTI MOVEMENT
ATMARAM AND SONS, LAHORE, 1934

97. RABINDRA NATH TAGORE (GURUDEV) - KABIR ONE HUNDRED POEMS
MEL MILLION, LONDON, 1967

पत्र-पत्रिकाएं

पंजाब सौरभ	-	गुरु रविदास विशेषांक, भाषा विभाग, पंजाब, मई-जून, 1977
साहित्य संदेश	-	संत साहित्य विशेषांक, जुलाई-अगस्त, 1958, आगरा
कल्याण - 'योगांक'	-	वर्ष 10, अंक - 1 , गीता प्रेस, गोरखपुर ।
कल्याण - 'साधनांक'	-	भक्ति अंक, वेदान्तांक, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका	-	भाग - 14 , अंक -4 , बनारस ।
जागृति	-	रविदास अंक, फरवरी-1977

540445
8P